# जितने मत उतने पथ

भगवान श्रीरामकृष्ण, माँ श्रीसारदादेवी
तथा स्वामी विवेकानन्दजी के धर्मसमन्वय सम्बन्धित
विचारों का संकलन

भक्तश्रेष्ठ सुरेन्द्रनाथ मित्र ने एक श्रेष्ठ चित्रकार से बनवाया हुआ श्रीरामकृष्णदेव का सर्वधर्मसमन्वय-भाव प्रदर्शित करनेवाला चित्र। चित्र में श्रीरामकृष्ण ब्राह्मसमाज के नेता, तत्कालीन सुप्रसिद्ध वक्ता श्री केशवचन्द्र सेन को दिखा रहे हैं कि भिन्न भिन्न धर्मों के साधक कैसे एक ही ईश्वर की ओर जा रहे हैं। चित्र को देखकर श्रीरामकृष्णने कहा था – 'इस में सब कुछ है।'

# जितने मत उतने पथ

**भगवान श्रीरामकृष्ण, माँ श्रीसारदादेवी तथा**
**स्वामी विवेकानन्दजी के धर्मसमन्वय सम्बन्धित विचारों का संकलन**

रामकृष्ण मठ
नागपुर

प्रकाशक :
स्वामी व्योमरूपानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ
धन्तोली, नागपूर-४४० ०१२.

मुद्रक :
सूर्य ऑफसेट, रामदासपेठ, नागपुर-४४० ०१०.

# दो शब्द
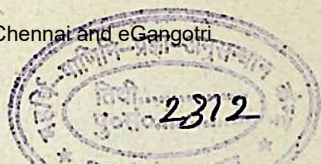


'जितने मत उतने पथ' – श्रीरामकृष्ण-श्रीमाँ एवम् स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रचारित सर्वधर्म समन्वय' – पाठकों के समक्ष रखते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

आज विश्व में हम विभिन्न मत-मतान्तरों, धर्मों एवं विचारधाराओं में घोर पारस्परिक संघर्ष पा रहे हैं। फलतः बड़ी अनिश्चितता तथा अशान्ति व्याप्त है। यथार्थतः हर धर्म में सत्य विद्यमान होता है परन्तु सही पथ निर्देश के अभाव में मनुष्य अज्ञानतावश अपने श्रम का अधिकांश कलह एवं द्वेष में नष्ट कर देता है। वर्तमान युग में सत्यद्रष्टा युगपुरुष भगवान् श्रीरामकृष्णदेव श्री-माँ सारदादेवी एवम् स्वामी विवेकानन्द के विचार मानवता को सही दिशा दिखाने में समर्थ है। अतः उससे लोगों में सत्य का प्रचार होगा इसी उद्देश्य से हम उनके विचारों को एक साथ संग्रहित कर प्रकाशित कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण-भक्त परिवार में भगवान श्रीरामकृष्ण श्री सारदादेवी एवं स्वामी विवेकानन्दजी क्रमशः ठाकुर, माताजी या श्रीमाँ एवं स्वामीजी के नाम से उल्लेखित होते हैं। इस पुस्तक में इन्हीं प्रचलित नामों का प्रयोग किया गया है।

इस विषय में श्रीरामकृष्णदेव ने अपने उपदेशों में साधकों एवं भक्तों को भरपूर दिशानिर्देश किया है। स्वामीजी के विचार उनके संभाषणों, पत्रों, वार्ताओं, कविताओं एवं संस्मरण से लिए गए है। परन्तु श्रीमाँ ने कभी भाषणादि का कार्य नहीं किया। अतः समय समय पर विभिन्न भक्तों से वार्ता के क्रम में जो सत्य उनके मुख से निःश्रृत हुई उसे हमने वार्ता के रूप में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन उपदेशों के संकलन का काम ब्रह्मचारी गौरीशंकर ने किया है।

जन साधारण में इन विचारों के प्रचार एवं प्रसार से धर्म एवं राष्ट्र के प्रति सच्ची भक्ति एवं मानवता के प्रति यथार्थ प्रेम की ज्योति प्रज्वलित होगी ऐसी हमारी आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है।

— प्रकाशक

नागपुर
११.७.१९९२

## भाग - १

# श्रीरामकृष्ण देव के विचार

१. यदि आन्तरिकता हो तो सभी धर्मों से ईश्वर मिल सकते हैं। वैष्णवों को भी मिलेंगे तथा शाक्तों, वेदान्तियों और ब्राह्मों को भी, मुसलमानों और इसाइयों को भी। हृदय से चाहने पर सबको मिलेंगे।

२. सब मार्गों से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। सभी धर्म सत्य हैं। छत पर चढ़ने से मतलब है, सो तुम पक्की सीढ़ी से भी चढ़ सकते हो, लकड़ी की सीढ़ी से भी चढ़ सकते हो, बाँस की सीढ़ी से भी चढ़ सकते हो और फिर एक गाँठदार बाँस के जरिए भी चढ़ सकते हो।

३. कोई कोई झगड़ा कर बैठते हैं। वे कहते हैं कि हमारे श्रीकृष्ण को भजे बिना कुछ न होगा; अथवा हमारे ईसाई धर्म को ग्रहण किए बिना कुछ न होगा।

ऐसी बुद्धि का नाम हठ धर्म है, अर्थात मेरा ही धर्म ठीक है और बाकी सब गलत। यह बुद्धि खराब है। ईश्वर के पास हम बहुत रास्तों से पहुँच सकते हैं।

४. यदि कहो, दूसरों के धर्म में अनेक भूल, कुसंस्कार हैं, तो मैं कहता हूँ हैं तो रहे, भूल सभी धर्मों में है। सभी समझते हैं मेरी घड़ी ठीक चल रही है। व्याकुलता होने से ही हुआ। उनसे प्रेम आकर्षण रहना चाहिए। वे

अन्तर्यामी जो हैं। वे अन्तर की व्याकुलता, आकर्षण को देख सकते हैं।

मानो एक मनुष्य के कुछ बच्चे हैं। उनमें से जो बड़े हैं वे 'बाबा' या 'पापा' इन शब्दों को स्पष्ट रूप से कहकर उन्हें पुकारते हैं। और जो बहुत छोटे हैं वे बहुत हुआ तो 'बा' या 'पा' कहकर पुकारते हैं। जो लोग सिर्फ 'बा' या 'पा' कह सकते हैं क्या पिता उनसे असन्तुष्ट होंगे ? पिता जानते हैं कि वे उन्हें ही बुला रहे हैं, परन्तु वे अच्छी तरह उच्चारण नहीं कर सकते। पिता की दृष्टि में सभी बच्चे बराबर हैं।

५. भक्ति ही सार है। ईश्वर सर्वभूतों में विराजमान हैं। तो फिर भक्त किसे कहूँ – जिसका मन सदा ईश्वर में है। अहंकार अभिमान रहने पर कुछ नहीं होता। "मैं"-रूपी टीले पर ईश्वर-कृपा रूपी जल नहीं ठहरता; लुढ़क जाता है।

६. फिर भक्तगण उन्हें ही अनेक नामों से पुकार रहे हैं। एक ही व्यक्ति को बुला रहे हैं। एक तालाब के चार घाट हैं। हिन्दू लोग एक घाट से जल पी रहे हैं और कहते हैं जल। मुसलमान लोग दूसरे घाट में पी रहे हैं – कहते हैं पानी। अंग्रेज लोग तीसरे घाट में पी रहे हैं और कह रहे हैं वाटर (water) और कुछ लोग चौथे घाट में पी रहे हैं और कहते हैं अकुवा (aqua)। एक ईश्वर उनके अनेक नाम हैं।

७. अनेक भावों से ईश्वर की पूजा होती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर। शहनाई बजाते समय एक आदमी केवल पोंऽऽ बजाता है उसके बाजे में भी सात छेद रहते हैं। और दूसरा व्यक्ति, उसी बाजे से जिसमें सात छेद हैं, अनेक राग-रागिनियाँ बजाता है।

८. अनेक पन्थों से तथा अनेक धर्मों द्वारा ईश्वर-प्राप्ति हो सकती हैं। बीच-बीच में निर्जन में साधन भजन करके भक्तिलाभ करते हुए संसार में रहा जा सकता हैं।

९. ज्ञान किसे कहते हैं, और मैं कौन हूँ ? 'ईश्वर ही कर्ता हैं और सब अकर्ता' इसी का नाम ज्ञान है। मैं अकर्ता, उनके हाथ का यन्त्र हूँ।

१०. जिन्हें ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, योगी उन्हीं को आत्मा कहते हैं और भक्त उन्हें भगवान् कहते हैं।

एक ही ब्राह्मण है। जब पूजा करता है, तब उसका नाम पुजारी है, जब भोजन पकाता है तब उसे रसोइया कहते हैं।

११. जो ज्ञानी है, ज्ञानयोग जिसका अवलम्बन है, वह 'नेति नेति' विचार करता है; – ब्रह्म न यह है, न वह; न जीव है, न जगत्।

परन्तु भक्तगण सभी अवस्थाओं को लेते हैं। वे जाग्रत अवस्था को भी सत्य कहते हैं; जगत् को स्वप्नवत् नहीं कहते। भक्त कहते हैं यह संसार भगवान् का ऐश्वर्य है; आकाश, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, पर्वत, समुद्र, जीव-जन्तु आदि सभी भगवान् की सृष्टि है, उन्ही का ऐश्वर्य है। वे हृदय के भीतर हैं और बाहर भी।

१२. परन्तु वस्तु एक ही है। केवल नाम का भेद है। जो ब्रह्म है वही आत्मा, वही भगवान्। ब्रह्मज्ञानियों के लिए ब्रह्म, योगियों के लिए परमात्मा और भक्तों के लिए भगवान्।

१३. जिस प्रकार 'जल' 'वाटर' और 'पानी'। तीनों एक हैं, भेद केवल नामों में है। उन्हें कोई 'अल्लाह' कहता है, कोई 'गाड'; कोई 'ब्रह्म' कहता है, कोई 'काली'; कोई राम, हरि, ईसा, दुर्गा आदि।

काली का रंग काला थोड़े ही है। दूर है, इसी से काला जान पड़ता है; समझ लेने पर काला नहीं रहता। समुद्र का पानी दूर से नीला जान पड़ता है, पास जाकर चुल्लू में लेकर देखों, कोई रंग नहीं।

१४. रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे। उनके गुरु थे अद्वैतवादी। आखिर दोनों में अनबन होने लगी। गुरु-शिष्य आपस में एक दूसरे के मत का

खण्डन करने लगे। ऐसा हुआ करता है। चाहे जो कुछ हो, फिर भी हैं तो अपने ही।

१५. ईश्वर-लाभ होने पर अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है, उसी समय किसे कौन सा रोग है यह समझ में आता है योग्य उपदेश दिया जा सकता है।

आदेश न मिलने पर 'मैं लोगों को शिक्षा दे रहा हूँ' इस प्रकार का अहंकार होता है। अहंकार होता है अज्ञान के कारण। अज्ञान से ऐसा लगता है कि मैं कर्ता हूँ। ईश्वर ही कर्ता हैं, ईश्वर सब कुछ कर रहे है; मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ – यह बोध हो जाने पर तो मनुष्य जीवन्मुक्त हो गया। "मैं कर्ता हूँ" इस बोध के कारण ही इतना दुःख, इतनी अशान्ति पैदा होती है।

१६. जो मनुष्य सर्वदा ईश्वर-चिन्तन करता है, वही जान सकता है कि उनका स्वरूप क्या है। वही मनुष्य जानता है कि वे अनेकानेक रूपों में दर्शन देते हैं, अनेक भावों में दीख पड़ते हैं – वे सगुण हैं और निर्गुण भी। दूसरे लोग केवल वादविवाद करके कष्ट उठाते हैं। कबीर कहते थे; – 'निराकार मेरा पिता है और साकार मेरी माँ।'

एक वृक्ष पर एक गिरगिट था। एक व्यक्ति ने देखा हरा, दूसरे ने देखा काला और तीसरे ने पीला, इस प्रकार अलग अलग व्यक्ति अलग अलग रंग देख गए। बाद में वे आपस में विवाद कर रहे हैं। एक कहता है, वह जन्तु हरे रंग का है। दूसरा कहता है, नहीं लाल रंग का, कोई कहता है पीला, और इस प्रकार आपस में सब झगड़ रहे हैं। उस समय वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति बैठा था, सब मिलकर उसके पास गए। उसने कहा, "मैं इस वृक्ष के नीचे रातदिन रहता हूँ, मैं जानता हूँ, यह बहुरुपिया है। क्षण क्षण में रंग बदलता है, और फिर कभी इसके कोई रंग नहीं रहता।

१७. जो भक्त जिस प्रकार देखता है वह वैसा ही समझता है। वास्तव में गोरखधन्धा कुछ भी नहीं। यदि उन्हें कोई किसी तरह एक बार प्राप्त

कर सके, तो वे सब समझा देते हैं। उस मुहल्ले में गए ही नहीं, – कुल खबर कैसे पाओगे ?

१८. भक्त को जो स्वरूप प्यारा है, उसी रूप से वे दर्शन देते हैं – वे भक्तवत्सल हैं न। पुराण में कहा है कि वीर भक्त हनुमान के लिए उन्होंने रामरूप धारण किया था।

१९. वेदान्त-विचार के सामने नाम-रूप कुछ नहीं ठहरते। उस विचार का चरम सिद्धान्त है – 'ब्रह्म सत्य और नामरूपोंवाला संसार मिथ्या।' जब तक 'मैं भक्त हूँ' यह अभिमान रहता है, तभी तक ईश्वर का रूप दिखायी देना और ईश्वर के सम्बन्ध में व्यक्ति (Person) का बोध रहना सम्भव है। विचार की दृष्टि से देखें तो भक्त के "मैं भक्त हूँ" इस अभिमान ने उसे कुछ दूर कर रखा है।

अनन्त ईश्वर समझ में थोडे ही आ सकते हैं और उन्हें समझने की जरूरत भी क्या? यह दुर्लभ मनुष्यजन्म प्राप्त कर हमें वह करना चाहिए जिससे उनके चरण-कमलों में भक्ति हो। यदि लोटे भर पानी से हमारी प्यास बुझे तो तालाब में कितना पानी है, इसकी नापतौल करने की क्या जरूरत ?

२०. किसी से द्वेष न करना चाहिए। शिव, काली, हरि – सब एक ही के भिन्न भिन्न रूप हैं। वह धन्य है जिसको उनके एक होने का ज्ञान हो गया है। यदि कहो किस मूर्ति का चिन्तन करेंगे तो जो मूर्ति अच्छी लगे, उसी का ध्यान करना। परन्तु समझना कि सभी एक हैं।

भक्तों के जाति नहीं है। भक्ति होने से ही देह, मन, आत्मा सब कुछ शुद्ध हो जाते हैं। गौर, निताई हरिनाम देने लगे और चाण्डाल तक सभी को गोद में लेने लगे। भक्ति न रहने पर ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। भक्ति रहने पर चाण्डाल चाण्डाल नहीं है। अस्पृश्य जाति भक्ति होने पर शुद्ध पवित्र हो जाती है।

२१. वे केवल निराकार नहीं, साकार भी हैं। उनके रूप के दर्शन होते हैं। भाव और भक्ति से उनके अनुपम रूप के दर्शन मिलते हैं। माँ अनेक रूपों में दर्शन देती हैं। कल माँ को देखा, गेरुआ रंग का अँगरखा पहने हुए। मेरे साथ बातें कर रही थीं। और एक दिन मुसलमान लड़की के रूप में मेरे पास आयी थीं। कपाल पर तिलक, पर शरीर पर कपड़ा नहीं। छः-सात साल की बालिका, मेरे साथ साथ घूमने और मुझसे हँसी-ठट्टा करने लगी।

२२. गृहस्थी में रहो, अथवा कहीं भी रहो, ईश्वर मन को देखते हैं। विषयबुद्धिवाला मन मानो भीगी दियासलाई, चाहे जितना रगड़ो कभी नहीं जलेगी। एकलव्य ने मिट्टी के बने द्रोण अर्थात् अपने गुरु की मूर्ति के सामने रखकर बाण चलाना सीखा था।

२३. जो लोग अज्ञानी हैं, वे मानो मिट्टी की दीवालवाले कमरे के भीतर हैं। भीतर भी रोशनी नहीं है और बाहर की किसी चीज को भी देख नहीं सकते। ज्ञान प्राप्त करके जो लोग संसार में रहते हैं वे मानो काँच के बने कमरे के भीतर हैं। भीतर रोशनी, बाहर भी रोशनी; भीतर की चीजों को भी देख सकते हैं और बाहर की चीजों को भी !

२४. विषयासक्त लोगों का ईश्वर कैसा होता है, जानते हो ? जैसे माँ-काकी का झगड़ा सुनकर बच्चे भी झगड़ते हुए कहते हैं, मेरे ईश्वर हैं।

मेरा धर्म ठीक है और दूसरों का गलत – यह मत अच्छा नहीं। ईश्वर एक ही हैं, दो नहीं। उन्हीं को भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। कोई कहता है गाड तो कोई अल्लाह, कोई कहता है कृष्ण, कोई शिव तो कोई ब्रह्म।

२५. मत तो पथ है। एक-एक धर्ममत एक-एक पथ है जो ईश्वर की ओर ले जाता है। जैसे नदियाँ नाना दिशाओं से आकर सागर में मिल जाती हैं।

मैंने भी वृन्दावन में वैष्णव वैरागी का भेष ग्रहण किया था। उस भाव में तीन दिन रहा। फिर दक्षिणेश्वर में राम-मन्त्र लिया था। लम्बा तिलक, गले में कण्ठी; फिर थोड़े ही दिनों के बाद सबकुछ हटा दिया।

२६. वेद, पुराण, तन्त्र – सब का प्रतिपाद्य विषय वही एक सच्चिदानन्द है। वेदों में सच्चिदानन्द ब्रह्म, पुराणों में सच्चिदानन्द कृष्ण, तन्त्रों में सच्चिदानन्द शिव कहा है। सच्चिदानन्द ब्रह्म, सच्चिदानन्द कृष्ण, सच्चिदानन्द शिव – एक ही हैं।

२७. 'तुम' और 'तुम्हारा' – यह ज्ञान है; 'मैं' और 'मेरा' – यह अज्ञान है।'हे ईश्वर, तुम कर्ता हो; मैं अकर्ता' – यही ज्ञान है। 'हे ईश्वर सब कुछ तुम्हारा है; देह, मन, घर, परिवार, जीव, जगत् – यह सब तुम्हारा ही है, मेरा कुछ नहीं' – इसी का नाम ज्ञान है।

जो अज्ञानी है, वही कहता है कि ईश्वर 'वहाँ' – बहुत दूर हैं। जो ज्ञानी है, वह जानता है कि ईश्वर 'यहाँ' – अत्यन्त निकट, हृदय के बीच अर्न्तयामी के रूप में विराजमान हैं, फिर उन्होंने स्वयं भिन्न-भिन्न रूप भी धारण किए हैं।

दया बहुत अच्छी है। दया और माया में बड़ा अन्तर है। दया अच्छी है, माया अच्छी नहीं। माया का अर्थ है आत्मीयों से प्रेम – अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बहन, भतीजा, भानजा, माँ, बाप इन्हीं से प्रेम। दया अर्थात् सब प्राणियों से समान प्रेम।

२८. जो भी धर्म हो, जो भी मत हो, सभी उसी एक ईश्वर को पुकार रहे हैं। इसलिए किसी धर्म अथवा मत के प्रति अश्रद्धा या घृणा नहीं करनी चाहिए। एक के अतिरिक्त दो तो नहीं हैं, चाहे जिस नाम से कोई ईश्वर को पुकारे, यदि वह पुकार हार्दिक हो तो वह उसके पास अवश्य ही पहुँचेगी। व्याकुलता चाहिए।

२९. एक आदमी के पास एक बर्तन था। लोग उसके पास कपड़ा रँगवाने के लिए जाते थे। बर्तन में एक रंग तैयार रहता। परन्तु जिसे जिस रंग की आवश्यकता होती, उस बर्तन में कपड़ा डुबाने से वह उसी रंग का हो जाता। यह देखकर एक व्यक्तिं विस्मित होकर रंगवाले से कहता है कि तुम स्वयं जिस रंग से रंगे हो वही रंग मुझे दो !

३०. असल बात यह है कि उनसे प्रेम करना चाहिए, उनके माधुर्य का आस्वादन करना चाहिए।

मैं सम्प्रदाय का नेता हूँ; मैंने सम्प्रदाय बनाया है, मैं लोगों को शिक्षा दे रहा हूँ' – इस तरह का अभिमान 'कच्चा अहं' है। किसी मत का प्रचार करना बड़ा कठिन काम है। वह ईश्वर की आज्ञा बिना नहीं हो सकता। ईश्वर का आदेश होना चाहिए। शुकदेव को भागवत की कथा सुनाने के लिए आदेश मिला था। यदि ईश्वर का साक्षात्कार होने के बाद किसी को आदेश मिले और तब यदि वह प्रचार का बीड़ा उठाए – लोगों को शिक्षा दे, तो कोई हानी नहीं। उसका अहं 'कच्चा अहं' नहीं, 'पक्का अहं' है।

३१. संसार में रातदिन रहने पर अशान्ति होती है। देखो न, एक गज जमीन के लिए भाई भाई में मारकाट होती है। सिक्खों का कहना है कि जमीन, स्त्री और धन – इन्हीं तीनों के लिए इतनी गड़बड़ तथा अशान्ति होती है।

उत्तम भक्त कौन है ? जो ब्रह्मज्ञान के बाद देखता है कि ईश्वर ही जीव, जगत् और चौबीस तत्त्व हुए हैं। पहले 'नेति नेति' करके विचार करते हुए छत पर पहुँचना पड़ता है। फिर वही आदमी देखता है कि छत जिन चीजों – ईंट, चूने और सुरखी से बनी है, सीढ़ी भी उन्हीं से बनी है। तब वह देखता है कि ब्रह्म ही जीव, जगत् और सब कुछ है। वैष्णव-ग्रन्थ में कहा है, 'विश्वास से कृष्ण मिलते हैं, वे तर्क से बहुत दूर हैं।' केवल विश्वास !

कृष्णकिशोर का क्या ही विश्वास है ! वृन्दावन में कुएँ से एक नीच जाति के पुरुष ने जल निकाला; कृष्णकिशोर ने उससे कहा, 'तू बोल शिव'; उसके शिवनाम लेते ही उसने जल पी लिया।

३२. भक्तवत्सल रामचन्द्र ने प्रिय भक्त गुह को देखते ही दृढ़ आलिंगन में बाँध हृदय से लगा लिया। दोनों की देह आँसुओं से तर हो गयी। निषादराज गुह धन्य हो गए। चारों ओर उनका जयजयकार होने लगा।

३३. नहीं भाई, वादविवाद से कोई काम नहीं, सभी कहते हैं, 'मेरी घड़ी ठीक चल रही है।' एक स्थान पर भण्डारा हो रहा था। अनेक साधु-सम्प्रदाय थे। सभी कहते हैं हमारी सेवा पहले हो, उसके बाद दूसरे सम्प्रदायों की। कुछ भी निश्चित न हो सका। अन्त में सभी चले गए और वेश्याओं को खिलाया गया।

३४. किसी से, किसी मत से विद्वेष नहीं करना चाहिए। निराकारवादी, साकारवादी, सभी उन्हीं की ओर जा रहे हैं; ज्ञानी, योगी, भक्त सभी उन्हें खोज रहे हैं। किसी एक पथ से ठीक-ठीक जा सकने पर उनके पास पहुँचा जा सकता है, उस समय सभी पथों का पता भी जाना जा सकता है। जैसे एक बार किसी तरह यदि छत पर उठना सम्भव हो सके, तो लकड़ी की सीढ़ी से भी उतरा जा सकता है, पक्की सीढ़ी से भी, एक बाँस के सहारे भी और एक रस्सी के द्वारा भी।

३५. जितनें आदमियों को देखता हूँ, धर्म-धर्म करके एक दूसरे से झगड़ा किया करते हैं। हिन्दु, मुसलमान, ब्राह्मसमाजी, शाक्त, वैष्णव, शैव, सब एक दूसरे से लडाई-झगड़ा करते हैं। यह बुद्धिमानी नहीं है। वस्तु एक ही है, केवल उसके नाम अलग-अलग हैं। सब लोग एक ही वस्तु की चाह कर रहे हैं। अन्तर इतना ही है कि देश अलग है, पात्र अलग और नाम अलग।

जिन्हें कृष्ण कहते हो, वे ही शिव, वे ही आद्याशक्ति हैं, वे ही ईसा और वे ही अल्लाह हैं। एक राम उनके हजार नाम। वेद, पुराण, तन्त्र-शास्त्र उन्हीं को चाहते हैं; वे किसी दूसरे को नहीं चाहते। सच्चिदानन्द बस एक ही हैं।

३६. ब्राह्मसमाजी निराकार – निराकार कहा करते हैं। खैर, कहें। उन्हें अन्दर से पुकारने ही से हुआ। अगर अन्तर की बात हो तो वे अन्तर्यामी हैं, वे अवश्य समझा देंगे, उनका स्वरूप क्या है।

परन्तु यह अच्छा नहीं – यह कहना कि हम लोगों ने जो कुछ समझा है, वही ठीक है, और दूसरे जो कुछ करते हैं, सब गलत। हम लोग निराकार कह रहे हैं, अतएव वे साकार नहीं, निराकार हैं; हम लोग साकार कह रहे हैं अतएव वे साकार हैं, निराकार नहीं। मनुष्य क्या कभी उनकी इति कर सकता है?

३७. इसी तरह वैष्णवों और शाक्तों में भी विरोध है। वैष्णव कहता है, 'हमारे केशव ही एकमात्र उद्धारकर्ता हैं' और शाक्त कहता है, 'बस हमारी भगवती एकमात्र उद्धार करनेवाली है।'

धर्म के नाम पर लठ्ठम-लठ्ठा, मार-काट? यह सब अच्छा नहीं है। सब उन्हीं के पथ पर जा रहे हैं। आन्तरिकता होने पर, व्याकुलता आने पर – उन्हें मनुष्य प्राप्त करेगा ही।

३८. उन्हें प्राप्त कर लेने पर पण्डितगण सब घास-पात की तरह जान पड़ते हैं। पद्मलोचन ने कहा था, तुम्हारे साथ अछूतों के घर की सभा में भी जाऊँगा, इसमें भला हर्ज ही क्या है ? – तुम्हारे साथ चमार के यहाँ भी जाकर मैं भोजन कर सकता हूँ।

३९. मैंने सब तरह किया है – सब शास्त्रों को मानता हूँ। शाक्तों को भी मानता हूँ और वैष्णवों को भी। उधर वेदान्तवादियों को भी मानता हूँ।

यहाँ इसी लिए सब मतों के आदमी आया करते हैं। और सब यही सोचते हैं कि ये हमारे मत के आदमी हैं। आजकल के ब्राह्मसमाजवालों को भी मानता हूँ।

४०. एक ही ढर्रे का मैं क्यों हो जाऊँ ? 'अमुक मत के आदमी फिर न आएगें' मुझे इसका भय नहीं है।

उन्हीं की इच्छा से अनेक धर्मों और मतों का चलन हुआ है। जिसे जो सह्य है उसे उन्होंने वही दिया है। जिसकी जैसी प्रकृति, जिसका जैसा भाव, वह उसे ही लेकर रहता है।

किसी धार्मिक मेले में अनेक तरह की मूर्तियाँ पायी जाती हैं और वहाँ अनेक मतों के आदमी जाते हैं। राधा-कृष्ण, हर-पार्वती, सीता-राम, जगह जगह पर भिन्न भिन्न मूर्तियाँ रखी रहती हैं। और हर एक मूर्ति के पास लोगों की भीड़ होती है। जो लोग वैष्णव हैं उनकी अधिक संख्या राधा-कृष्ण के पास खड़ी हुई है, जो शाक्त हैं, उनकी भीड़ हर-पार्वती के पास लगी है। जो राम-भक्त हैं, वे सीता-राम की मूर्ति के पास खड़े हुए हैं।

४१. मैं क्यों एक ढर्रे का होऊँ ? वे लोग वैष्णव हैं, बड़े कट्टर हैं, सोचते हैं, हमारा ही धर्म ठीक है, और सब वाहियात है। मैंने जो बातें सुनाई हैं, उनसे उसे चोट पहुँची होगी। हाथी के सिर पर अंकुश मारा जाता है। कहते हैं, वही उसके सिर पर कोष (कोमल अंग) रहता है।

४२. जितने मत उतने पथ। अनन्त मत हैं, और अनन्त पथ। एक को बलपूर्वक पकड़ना पड़ता है। छत पर जाने की चाह है, तो जीने से भी चढ़ सकते हो; बाँस की सीढ़ी लगाकर भी चढ़ सकते हो। परन्तु एक पैर इसमें और दूसरा उसमें रखने से नहीं होता। एक को दृढ़ भाव से पकड़े रहना चाहिए। ईश्वरलाभ करने की इच्छा हो तो एक ही रास्ते पर चलना चाहिए। और दूसरे मतों को भी एक एक मार्ग समझना। यह भाव न हो

कि मेरा ही मार्ग ठीक है, और सब झूठ है; द्वेष न हो। किसी की निन्दा न किया करो – एक कीड़े की भी नहीं।

४३. मैं कहता हूँ, उनको सभी पुकार रहे हैं। द्वेष की क्या जरूरत है ? कोई साकार कहता है और कोई निराकार। मैं कहता हूँ, जिसका विश्वास साकार पर है, वह साकार की ही चिन्ता करे और जिसका विश्वास निराकार पर है, वह निराकार की चिन्ता करे।

तात्पर्य यह है कि इस कट्टरता की कोई आवश्यकता नहीं कि मेरा ही धर्म ठीक है, तथा अन्य सब वाहियात हैं। 'मेरा धर्म ठीक है, पर दूसरों के धर्म में सच्चाई है या वह गलत है, यह मेरी समझ में नहीं आता', ऐसा भाव अच्छा है, क्योंकि बिना ईश्वर का साक्षात्कार किए उनका स्वरूप समझ में नहीं आता। कबीर कहते थे, साकार मेरी माँ है और निराकार मेरा बाप।

४४. केवल कट्टरता अच्छी नहीं होती। हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, शाक्त, वैष्णव, शैव, ऋषियों के समय के ब्रह्मज्ञानी और आजकल के ब्राह्मसमाजवाले तुम लोग सब ही वस्तु की चाह रखते हो। अन्तर इतना है कि जिससे जिसका हाजमा नहीं बिगड़ता, उसी की व्यवस्था उसके लिए माँ ने की है।

बात यह है कि देश, काल और पात्र के भेद से ईश्वर ने अनेक धर्मों की सृष्टि की है। परन्तु सब मत ही उनके रास्ते हैं, पर मत कभी ईश्वर नहीं है।

४५. अगर किसी मत का आश्रय लेने पर कोई भूल उसमें रहती है, तो आन्तरिकता के होने पर वे भूल सुधार देते हैं। अगर कोई आन्तरिक भक्ति के साथ जगन्नाथजी के दर्शनों के लिए निकलता है और भूलकर दक्षिण की ओर न जाकर उत्तर की ओर चला जाता है, तो रास्ते में उसे कोई अवश्य ही कह देता है, 'क्यों भाई, उस तरफ कहाँ जाते हो, दक्षिण की ओर जाओ।' वह आदमी कभी न कभी जगन्नाथजी के दर्शन अवश्य ही करेगा।

परन्तु इस बात की आलोचना हमारे लिए निष्प्रयोजन है कि दूसरों का मत गलत है। मिश्री की रोटी सीधी तरह से खाओ या तेढ़ी करके खाओ, मीठी जरूर लगेगी।

४६. मैंने बहुत से मत देखे, बहुत से पथ देखे। ईश्वर के पास पहुँचने के अनेक मार्ग हैं। सभी मत एक एक मार्ग है जैसे काली-मन्दिर जाने की बहुत सी राहें हैं। इनमें भेद इतना ही है कि कोई राह शुद्ध है और कोई राह अशुद्ध; शुद्ध रास्ते से होकर जाना ही अच्छा है।

पुराण के मत से चाण्डाल को भी अगर भक्ति हो, तो उसकी भी मुक्ति होगी। इस मत के अनुसार नाम लेने से ही काम होता है। योग, तन्त्र, मन्त्र इनकी कोई आवश्यकता नहीं है।

४७. जिस मनुष्य का जो भाव है, मैं उसके उस भाव की रक्षा करता हूँ। वैष्णवों से वैष्णव-भाव ही रखने के लिए कहता हूँ;शाक्तों से शाक्त-भाव; परन्तु इतना उनसे और कह देता हूँ कि यह मत कहो कि हमारा ही मार्ग सत्य है और बाकी सब मिथ्या – भ्रम है।

हिन्दु, मुसलमान, ईसाई ये सब अनेक मार्गों से होकर एक ही जगह जा रहे हैं। अपने भाव की रक्षा करते हुए, उन्हें हृदय से पुकारने पर उनके दर्शन होते हैं। रुचिभेद के अनुसार – अधिकारियों में भेद देखकर एक ही चीज के कितने ही रूप कर दिए जाते हैं।

४८. चरवाहे जब गौओं को चराने के लिए ले जाते हैं, तब चरागाह में सब गौएँ एक में मिल जाती हैं। जब शाम के समय अपने घर में जाती हैं तब फिर सब अलग अलग हो जाती हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ, अपने घर में – 'अपने आप' में ही रहो। जब बाहर के लोगों से मिलना तब सभी को प्यार करना; मिलकर एक हो जाना – फिर द्वेषभाव जरा भी न रखना। 'वह आदमी साकार मानता है, निराकार नहीं मानता; वह निराकार मानता है,

साकार नहीं मानता, वह हिन्दु है, वह मुसलमान है, वह क्रिस्तान है, यह कह-कहकर घृणा से नाक न सिकोड़ना; क्योंकि उन्होंने जिसे जिस तरह समझाया है, उसमें वैसी ही बुद्धि है। समझना कि सब की प्रकृति भिन्न भिन्न है। यह जानकर तुमसे जहाँ तक हो सके, दूसरों से मिलने की ही चेष्टा करना और उन्हें प्यार करना।

४९. फिर सभी पथों में भूल है – सभी समझते हैं, मेरी घड़ी ठीक जा रही है, पर किसी की घड़ी ठीक नहीं चलती। तिस पर भी किसी का काम बन्द नहीं रहता। व्याकुलता हो तो साधु-संग मिल जाता है; साधुसंग से अपनी घड़ी बहुत कुछ मिला ली जा सकती है।

नदियाँ भिन्न भिन्न दिशाओं से आती हैं, परन्तु सभी समुद्र में जा गिरती हैं। वहाँ पर सभी एक हैं।

५०. लोग समझते है, 'मेरा ही धर्म ठीक है; ईश्वर क्या चीज है, मैंने ही समझा है, दूसरे लोग नहीं समझ सके। मैं ही उन्हें ठीक पुकार रहा हूँ, दूसरे लोग ठीक पुकार नहीं सकते। अतः ईश्वर मुझ पर ही कृपा करते हैं, उन पर नहीं करते।' ये सब लोग नहीं जानते कि ईश्वर सभी के पिता-माता हैं, आन्तरिक प्रेम होने पर वे सभी पर कृपा करते हैं।

अज्ञान के ही कारण मनुष्य अपने स्वयं के धर्म को श्रेष्ठ समझते हुए व्यर्थ का शोर मचाता है। जब चित्त में यथार्थ ज्ञान का प्रकाश आ जाता है तो सब साम्प्रदायिक कलह शान्त हो जाते हैं।

एक बार चार अन्धे हाथी देखने गए थे। उनमें से एक हाथी के पैर को छू कर कहने लगा, "हाथी खम्भे-जैसा है।" दूसरे ने हाथी की सूँड़ को छुआ, वह कहने लगा, "हाथी अजगर-जैसा है।" तीसरा अन्धा हाथी के पेट को छू आया था; वह कहने लगा, "हाथी बड़ी नाँद की तरह है।" चौथा हाथी के कान का स्पर्श कर आकर कहने लगा, "हाथी तो सूप-जैसा है।"

इस तरह चारों हाथी के रूप के बारे में वाद-विवाद करने लगे। उनका कोलाहल सुन एक व्यक्ति ने आकर पूछा, "क्या बात हैं ? तुम लोग क्यों झगड़ रहे हो ?" तब उन्होंने उसे मध्यस्थ ठहराकर सब किस्सा कह सुनाया। सुनकर वह आदमी बोला; "तुममें से किसी ने भी ठीक-ठीक हाथी को नहीं देखा। हाथी खम्भे के जैसा नहीं, उसके पाँव खम्भे जैसे हैं। वह अजगर-जैसा नहीं उसकी सूँड अजगर-जैसी है। वह नाँद जैसा नही, उसका पेट नाँद के जैसा है। वह सूप-जैसा नहीं, उसके कान सूप-जैसे हैं। इन सब को मिलाकर ही हाथी बना है।" जिन्होंने ईश्वर के स्वरूप के एक ही पहलू को देखा है, वे इसी प्रकार आपस में झगड़ते रहते हैं।

५१. अज्ञान के ही कारण मनुष्य अपने स्वयं के धर्म को श्रेष्ठ समझते हुए व्यर्थ का शोर मचाता है। जब अपने चित्त में यथार्थ ज्ञान का प्रकाश आ जाता है तो सब साम्प्रदायिक कलह शान्त हो जाते हैं।

बड़े तालाबों में, स्वच्छ जल में 'दल' (एक प्रकार का जलीय घास) नहीं होता, वह छोटी, सड़ी तलैया में ही पैदा होता है। इसी प्रकार जिस सम्प्रदाय के लोग शुद्ध, उदार, निःस्वार्थ भाव से परिचालित होकर कार्य करते हैं, उसमें फूट होकर दल निर्माण नहीं होते। दल तो उसी सम्प्रदाय में बनते हैं जिसके लोग स्वार्थी, कपटी और कट्टर होते हैं।

५२. सूर्य दूर है, इसलिए छोटा दिखता है; पास जाने पर फिर छोटा नहीं रहता, ईश्वर का स्वरूप ठीक जान लेने पर फिर काला भी नहीं रहता, छोटा भी नहीं रहता। यह बहुत दूर की बात है। समाधिमग्न न होनेसे उन्हीं की सब लीला है। 'मैं' 'तुम' है तब तक नाम-रूप भी हैं। उन्हीं की सब लीला है। 'मैं-तुम' जब तक रहते हैं, तब तक वे अनेक रूपों में प्रकट होते हैं।

५१. **श्रीमन्मथनाथ घोषजी का संस्मरण :–** एक दिन मैंने देखा कि

जरतला मस्जिद, कलकत्ता में एक फकीर शाम मे जोर-जोर से इस तरह प्रार्थना कर रहा था, "हे प्रभो, तुम आओ; हे प्रिय, दया कर तुम आओ।" उसकी प्रार्थना में इतनी गहरी आन्तरिकता थी कि उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। इसी समय श्रीरामकृष्णदेव काली घाट से लौटते समय उधर से निकले। एकाएक उन्होंने गाड़ी रुकवायी और नीचे उतरकर दौड़ते हुए फकीर की ओर आए। दोनों एक दूसरे से गले मिलकर प्रेमाश्रु बहाने लगे। इस अद्भुत दृश्य को देखकर सभी दंग रह गए।

५२. **श्री मनीन्द्र कृष्ण गुप्तजी का संस्मरण :-** एक दिन एक ईसाई संन्यासी आया। उसने श्रीरामकृष्णदेव को प्रभु यीशु के रूप में पूजा था। उनको अपने आराध्यदेव मान कर साधना की थी। उसकी भावना से विव्हल होकर श्रीरामकृष्णदेव खड़े होकर समाधिस्थ हो गए। उस अवस्था में उनके दोनों हाथ प्रभु यीशु के हाथों की तरह उठ गए। ईसाई संन्यासी भावमग्न हो गया। बाद में उसने बतलाया कि श्रीरामकृष्ण देव के रूप में उसने प्रभु यीशु का दर्शन किया है।

## भाग - २

# श्रीमाँ सारदा देवी के विचार

(१) भक्त :- माँ, इस बार ठाकुर जो सर्वधर्म-समन्वय कर गए, तो क्या वे अब की यही नयी बातें देने आए थे ?

श्रीमाँ :- श्रीरामकृष्णदेव तो सदैव भगवद्भाव में विभोर रहते थे। ईसाई, मुसलमान जिस-जिस प्रकारसे साधन-भजन करके उस परम वस्तु को प्राप्त करते हैं, उस उस प्रकार कीं साधनाओं द्वारा वे भगवान् की अनन्त लीला का आस्वादन करते थे। दिन और रात कहाँ से आकर कहाँ निकल जाते, उन्हें इसका कोई होश नहीं रहता था। तो भी क्या बात है, जानते हो, बेटा ?

इस युग में 'त्याग' ही उनका विशेषत्व है। इस प्रकार का स्वाभाविक त्याग क्या किसी ने दूसरे किसी भी युग में देखा है ? तुमने जो सर्वधर्म-समन्वय की बात कही, वह भी ठीक है। अन्य-अन्य बार किसी एक ही भाव को प्राधान्य दे देने से दूसरे सब भाव ढँक गए थे।

(२) भक्त :- माँ, मूर्तिपूजा क्या सत्य है ?

श्री माँ :- प्राचीन काल से अनेक लोगों ने मूर्तिपूजा के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया है। श्रीरामकृष्णदेव ने कभी भी अन्धविश्वास को स्थान नहीं दिया। ईश्वर सर्वत्र हैं। अवतारी पुरुष मानवता को रास्ता दिखाने के लिए ही जन्म लेते हैं। वे विभिन्न लोगों के मानसिक अवस्था के अनुरूप भिन्न भिन्न प्रकार के निर्देश देते हैं।

सत्य प्राप्ति के विभिन्न पथ हैं। अतः इन सभी निर्देशों का सापेक्षिक महत्त्व है। उदाहरण के लिए वृक्षों के डालियों पर कई पंछी होते हैं। वे सफेद, काले, लाल, पीले आदि विभिन्न रंगों के होते हैं। उनके आवाज भी भिन्न-भिन्न होते हैं। परन्तु जब वे गाते हैं तो हम कहते हैं कि यह चिड़ियों की आवाज है।

सभी गुरु एक ही हैं क्यों कि उन सभी के द्वारा परमेश्वर की एक ही शक्ति काम करती है।

(३) भक्त :- स्वामी विवेकानन्द तो खूब ही देश का काम करने को कह गए हैं और देश के नवयुवकों को उत्साहित करके निष्काम कर्म करने की नींव डाल गए हैं। वे यदि आज जीवित होते तो कितने ही काम होते!

श्रीमाँ :- अरे, मेरा नरेन (स्वामी विवेकानन्द) मानो म्यान से निकली तलवार था। विलायत से लौटकर उसने मुझसे कहा, 'माँ, आपकी कृपा से छलाँग मारने के बजाय उन्हीं के बनाए जहाज पर चढ़कर मैं उस देश में गया और वहाँ भी देखा कि ठाकुर की कितनी बड़ी महिमा है; कितने ही सज्जनों ने मन्त्रमुग्ध हो मुझसे आग्रह के साथ उनकी (श्रीरामकृष्ण की) बातें सुनीं तथा इस भाव को अपनाया।' आखिर, वे भी तो मेरे बच्चे ही ठहरे।

(४) भक्त :- महीन कपड़े तो विलायती होंगे – उन्हें फिर क्यों लाऊँ ?

श्रीमाँ :- बेटा, वे विलायतवाले भी तो मेरे बच्चे हैं। मुझे सब को

लेकर घर-बार करना पड़ता है। क्या मैं जिद्दी हो सकती हूँ ?

(५) भक्त :- माँ, इस देश की दुःख-दुर्दशा क्या दूर नहीं होगी ?

श्रीमाँ :- बेटा, ठाकुर (श्रीरामकृष्णदेव) इसीलिए तो आए थे। हम लोगों का जो कुछ है, सब के मूल ठाकुर (श्रीरामकृष्णदेव) हैं – वे ही आदर्श हैं। कुछ भी क्यों न करो, उन्हें पकड़े रहने से जरा भी इधर-उधर न होगा।

(६) भक्त :- श्रीरामकृष्ण के जन्म स्थान पर मन्दिर होने से हम लोगों के ही हाथों में रहेगा न ?

श्रीमाँ :- यह कैसे हो सकता है ?ये सब साधु-भक्त हैं, इनमें क्या जाति-पाँति का विचार है ? कितने देशों के लोग, जिनमें साहब भी होंगे, वहाँ जाएँगे, रहेंगे, प्रसाद पाएँगे।

(७) भक्त :- (अम्बिका नामक अछूत) - लोग तुम्हें देवी भगवती और न जाने क्या-क्या कहते हैं। पर मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता।

श्रीमाँ :- तुम्हें इन बातों को समझने का काम नहीं। तुम तो मेरे वही अम्बिका-दादा हो और मैं तुम्हारी सारदा-बहिन हूँ।

(८) भक्त :- माँ, अमजद (एक तूँतवाला मुसलमान) का जूठना साफ करने से तो तेरी जात चली गयी, क्यों ?

श्रीमाँ :- जिस प्रकार शरत् (स्वामी सारदानन्द; श्रीरामकृष्णदेव के एक मुख्य शिष्य) मेरा लड़का है; उसी प्रकार यह अमजद भी। मनुष्य में दोष तो लगा ही हुआ है। पर किस प्रकार उसे भला बनाना होगा, यह कितने लोग जानते हैं ?

यदि मेरी सन्तान अपने को धूल-कीचड़ में सान ले तो उसे धो-पोंछकर मुझ को ही तों गोद में उठाना होगा।

(९) भक्त :- माँ, देखो शूद्र होकर ब्राह्मण (श्री माँ के चाचा) के शव को छू लिया।

श्रीमाँ :– शूद्र कौन है ? भक्त की भी जाती होती है ?

(१०) श्रीमाँ :– (दक्षिण भारत में) इन लोगों की भाषा तो मैं जांनती नही हूँ, यदि इनसे दो बातें कर पाती तो इन्हें कितनी शान्ति मिलती।

भक्त :– नहीं, नहीं, यही ठीक है। इसी से (शान्तिमय दर्शन से) हम लोगों का हृदय आनन्द से भर गया है। ऐसे क्षेत्रों में मुख की भाषा की कोई आवश्यकता नहीं।

(११) भक्त :– (एक फटी हुई अंडी की चादर देखकर) – माँ, इसे रखकर क्या होगा ? इसमें कुछ नहीं है, फेंक दूँ ?

श्रीमाँ :– नहीं बेटा, इसे निवेदिता (स्वामी विवेकानन्द की एक विदेशी महिला भक्त) ने कितने प्यार से मुझे दिया था; इसे रहने दो। वह कहती थी कि वह पूर्व जन्म में हिन्दू थी। उस देश में श्रीरामकृष्ण की वाणी का प्रचार होगा, इसीलिए वहाँ जन्म लिया है। पहले-पहल मेरे साथ बात नहीं कर सकती थी, लड़के समझा दिया करते थे, पीछे बँगला सीख ली। मेरी माँ को बहुत प्यार करती थी।

(१२) भक्त : - (माँ के निर्देशानुसार) भूतसाहब की दरगाह में पूजा-चढ़ौत्री देने के बाद प्रसादी भभूत लाया हूँ।

श्रीमाँ : - (भभूत अपने माथे से छुलाते हुए) बेटा, भूतसाहब की प्रसादी भभूत शरीर और सिर में मल लो, शरीर स्वस्थ होगा। बड़े जाग्रत हैं। (प्रार्थना के स्वर में) "बाबा भूतसाहब, मेरे बेटे को ठीक कर दो, बाबा !"

(१३) भक्त : - माँ, ठाकुर की कोई बात कहो।

श्रीमाँ :- देखो ठाकुर, की प्रायः समाधि हुआ करती थी। एक दिन बहुत देर के बाद समाधि टूटी तो उन्होंने कहा, देखो जी, मैं एक देश गया था, वहाँ के लोग सभी गोरे हैं। अहा, उनकी भक्ती का क्या पूछना !" उस समय क्या मैं समझी थी कि ये ओली बुल (स्वामी विवेकानन्द की एक विदेशी

शिष्या) वगैरह सब भक्त होंगी ? मुझे तो सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि ये गोरे-गोरे मनुष्य क्या हैं ?

(१४) भक्त : - (एक डाक्टर की स्त्री) माँ, आशीर्वाद दीजिए कि आपके लड़के की कमाई अच्छी हो।

श्रीमाँ : - (दृढ़ता से) लोगों को रोग हो, दुःख-कष्ट हो, क्या मैं यही आशीर्वाद करूँ ? यह तो मुझसे नहीं होगा, बेटी । सभी अच्छे रहें, संसार का मंगल हो।

(१५) भक्त :- माँ, साधना किस भाव से करूँ।

श्रीमाँ : - बेटा ! ठाकुर क्या अलग, खण्ड हैं ? वे ही तो अखण्ड वस्तु हैं। जगत् में ब्रह्म को छोड़ और कुछ नहीं है। सभी पदार्थ ब्रह्म के प्रकाश हैं, ब्रह्म की ही शक्ति समस्त देवी-देवताओं में विराजित है। वही पुरुष है, फिर वही प्रकृति। ठाकुर तोड़ने नहीं आए थे। भक्त लोग कहते हैं कि मेरे भीतर ठाकुर ही हैं।

(१६) भक्त : - पुलिस दो महिलाओं को गलतफहमी में पकड़कर ले गयीं। गाँववालों ने पुलिसवालों की भूल को दिखाया, पर उन लोगों ने एक न सुनी; यहाँ तक कि जमानत पर छोड़ने के तथा उन्हें सवारी पर ले जाने के अनुरोध को भी उन्होंने नहीं माना।

श्रीमाँ :- कहते क्या हो ? यह क्या कम्पनी का आदेश है या पुलिस का कारनामा ? निरपराध स्त्रियों के ऊपर इतना अत्याचार तो महारानी विक्टोरिया के समय कभी नहीं सुना। यह यदि कम्पनी का आदेश है, तो (उनका राज) और अधिक दिन नहीं चलने का। वहाँ कोई माई का लाल नहीं था कि दो थप्पड़ लगाकर उन दो स्त्रियों को छुड़ा ले आता ?

(१७) भक्त :- अँगरेज सरकार ने हमारे देश में सुख-स्वच्छन्दता की वृद्धि की है।

श्रीमाँ :- लेकिन बेटा, ये सारी सुविधाएँ मिलने पर भी हमारे देश में अन्न-वस्त्र का अभाव बहुत बढ़ गया है। पहले इतना अन्न-कष्ट नहीं था।

(१८) भक्त :- माँ, कपड़े के अभाव के कारण स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकल सकती। लज्जा-निवारण में असमर्थ लड़कियाँ आत्महत्या कर रही हैं।

श्रीमाँ :- (विह्वल होकर) वे लोग (अँगरेज) कब जाएँगे, वे लोग कब यहाँ से भागेंगे ? उस समय घर-घर में चरखे चलते थे, खेतों में रुई होती थी, सभी सूत कातते थे, अपने कपड़े खुद ही तैयार कर लेते थे; इससे कपड़ों की कमी नहीं थी। कम्पनी ने आकर सभी नष्ट कर दिया। कम्पनी ने सुख दिखाया – रुपये में चार धोतियाँ, और एक मुफ्त। बस, सभी बाबू बन गए – चरखे का नामोनिशान न रहा। अब सभी बाबू काबू में पड़ गए हैं।

(१९) भक्त :- (प्रथम महायुद्ध के समय) - माँ, कोआलपाड़ा ग्राम में चरखे तथा करघे का काम आरम्भ हुआ है।

श्रीमाँ :- मुझे भी एक चरखा ला दो, मैं भी सूत कातूँगी। बेटा, संसार की भलाई करो।

(२०)भक्त :- माँ, मैं कायस्थ घराने की हूँ, ब्राह्मण-संतान होकर भला मुझे कोई प्रणाम कैसे कर सकता है ?

श्रीमाँ :- तुम भक्त हो, और भक्तों की कोई जात नहीं होती। तुम्हें प्रणाम करने से उन सब का कल्याण होगा।

(२१) भक्त :- ठाकुर का स्मरण किस तरह करूँगा ?

श्रीमाँ :- वे ही सब हैं – पुरुष तथा प्रकृति; उनका ध्यान करने से ही सब कुछ होगा। ठाकुर में सभी देवी-देवता विद्यमान हैं – यहाँ तक कि शीतला, मनसा भी। वे महेश्वर हैं, बेटा, वे ही महेश्वरी; वे ही सर्वदेवमय हैं,

वे ही सर्वदेवीमय हैं। उनमें सब देव-देवियों की पूजा होती है।

वे ही गुरु हैं, वे ही इष्ट हैं। मेरी एक बार ऐसी अवस्था हो गयी थी कि नैवेद्य से चीटियों को नहीं भगा सकती थी, ऐसा जान पड़ता था मानो ठाकुर ही खा रहे हों।

(२२) भक्त :– मैं 'युगी' जाति का हूँ, अतः माताजी के घर चलने-फिरने में बड़ा संकोच होता है।

श्रीमाँ :– तुम 'युगी' होने के कारण संकोच करते हो ? इसमें क्या है बेटा ? तुम ठाकुर के गण हो – घर के बच्चे घर आए हो।

(२३) भक्त :– एक तो तुम ब्राह्मण की बेटी हो, दूसरे गुरु हो – ये तुम्हारे शिष्य हैं। तुम इनकी जूठन क्यों उठाती हो ? इससे तो उनका ही अमंगल होगा।

श्रीमाँ :– अरी मैं इनकी माँ जो हूँ। माँ बच्चे के लिए न करे तो कौन करे?

(२४) भक्त (एक अँग्रेज महिला) :– मेरी पुत्री भीषण रोग से ग्रसित है।

श्रीमाँ :– (प्रसादी फूल तथा बिल्व पत्र देते हुए) - इसे अपनी लड़की के सिर पर फेरकर उसके तकिए के नीचे रख देना। . . . तुम्हारी लड़की अच्छी हो जाएगी।

(२५) भक्त :– (दीक्षा के लिए प्रार्थना करते हुए) – मैं बागदी जाती का हूँ, स्कूल में पढ़ता हूँ।

श्रीमाँ :– (अगले दिन दीक्षा देते हुए) – भक्तों की जाति नहीं हैं। . . . सब भक्त एक ही जाति के हैं।

(२६) भक्त :– माँ, आपको तपस्या करने की क्या आवश्यकता है ?

श्रीमाँ :– बेटा, तुम सब के लिए। लड़के क्या उतना कर सकेंगे ?

इसी से मुझे करना पड़ता है।

(२७) श्रीमाँ :- (एक डाक्टर भक्त द्वारा अब्राह्मण मित्र के पात्र से अन्न ग्रहण करने के बाद) – ये दोनों जैसे सहोदर हैं।

भक्त :- यह तो ठीक ही है, माँ,हमलोग तो आप की ही सन्तान हैं।

(२८) भक्त :- तुम कैसी माँ हो ?

श्रीमाँ :- मैं सच्ची माँ हूँ। गुरुपत्नी नहीं, मुँहबोली माँ नहीं, कहने की माँ नहीं, सत्य जननी हूँ।

(२९) भक्त :- माँ, आपके सभी लड़के विद्वान् हैं, हमी लोग एकदम मूर्ख हैं।

श्रीमाँ :- यह कैसी बात हैं ? ठाकुर तो कुछ भी लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे। भगवान् की तरफ खिंचाव ही असल है। ... इस बार ठाकुर आए हैं धनी-निर्धन, पण्डित-मूर्ख सब का उद्धार करने को। तुम लोगों को प्यार करती हूँ, तुम सब अपने हो।

(३०) भक्त :- माँ हम लोगों का क्या होगा ? (अन्तिम समय)

श्रीमाँ :- (अभय देते हुए) - डर क्या है ? तुमने तो ठाकुर को देखा है, फिर तुम्हें डर किस बात का ? . . . पर एक बात कह दूँ – यदि शान्ति चाहते हो तो किसी का दोष मत देखना। दोष केवल अपना ही देखना।

संसार को अपना बनाना सीखो। कोई पराया नहीं। संसार तुम्हारा है।

## भाग - ३

# स्वामी विवेकानन्द के विचार

(१) सभी धर्मों का ईश्वर एक ही है, चाहे वे धर्म हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई आदि भिन्न भिन्न नामवाले क्यों न हों; और जो इनमें से किसी की भी निन्दा करता है, वह अपने ही ईश्वर की निन्दा करता है।

(२) धर्म के बारे में कभी झगड़ा मत करो। धर्म सम्बन्धी सभी झगड़ा-फसादों से केवल यह प्रगट होता है कि आध्यात्मिकता नहीं है। धार्मिक झगड़े सदा खोखली बातों के लिए होते हैं। जब पवित्रता नहीं रहती, जब आध्यात्मिकता विदा हो जाती है और आत्मा को नीरस बना देती है, तब झगड़े शुरू होते हैं, इसके पहले नहीं।

(३) साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी बीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये बीभत्स दानवी न होती, तो मानव-समाज आज की अवस्था

से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता।

(४) शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी संप्रदायविशेष की एकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत-चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जाएँगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्थल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाए देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा – 'सहायता करो, लड़ो मत।' 'पर-भाव-ग्रहण, न कि पर-भाव-विनाश'; 'समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद और कलह।'

(५) इस प्रकार मेरे धर्म का अर्थ है प्रसार और प्रसार का उच्चतम भाव में अर्थ होता है – साक्षात्कार और प्रत्यक्षीकरण, केवल शब्दों की अस्पष्ट गुनगुनाहट या घुटनों के बल बैठना नहीं। मनुष्य को ईश्वर होना है। और वह एक अनन्त यात्रा में दिनोंदिन अधिक से अधिक देवत्व को प्राप्त करता जाता है।

(६) ये तीनों वे स्थितियाँ हैं, जिन्हें हर धर्म ने प्राप्त किया है। पहले हम ईश्वर को बहुत दूर देखते हैं, फिर हम उसके निकट आ जाते हैं और उसे सर्वव्यापकता देते हैं और इस प्रकार हम उसमें निवास करने लगते हैं तथा अन्त में हमें ज्ञान होता है कि हम स्वयं वही हैं।

एक बाह्य ईश्वर की धारणा असत्य नहीं है, वस्तुतः, ईश्वर सम्बन्धी हर धारणा और इसलिए हर धर्म सत्य है, क्यों कि वेदों की पूर्णता की धारणा की लक्ष्य-प्राप्ति की यात्रा में ये तो भिन्न भिन्न स्तर मात्र हैं।

(७) मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनो की ही शिक्षा

दी है। हम लोक सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं।

यह मानते हुए कि निम्नतम जड़-पूजा से लेकर उच्चतम अद्वैतवाद तक मानवात्मा द्वारा असीम को प्राप्त और प्रत्यक्षीकरण करने के ये अनेक प्रयत्न हैं, जो अपने जन्म और वातावरण के संयोग से निर्धारित होते हैं, तथा जिनमें से प्रत्येक प्रगति की एक अवस्था प्रकट करता है। हम इन सब पुष्पों को एकत्र करके उन्हें प्रेम के सूत्र में बाँधते हैं और इस प्रकार उपासना का एक आश्चर्यजनक पुष्पगुच्छ निर्मित करते हैं।

(८) मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है।

आज भी यह बात सर्वविदित है कि ईसाइयों के गिरजाघर बनाने में हिन्दुओं ने कितनी सहायता दी है और उन्हें सहायता देने के लिए वे किस तरह सदैव तत्पर रहते हैं। यहाँ धर्म के नाम पर रक्तपात कभी नहीं किया गया। यहाँ तक कि वेदों में विश्वास न करनेवाले वे धर्म भी, जो भारत की भूमि में उपजे और फले-फूले हैं, उसी प्रकार प्रभावित हुए हैं। उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म को लिया जा सकता है। बौद्ध धर्म में महान् और अच्छी बातें हैं, पर ये बातें ऐसे मनुष्यों के हाथ पड़ गयीं, जो उन्हें सुरक्षित रखने में असमर्थ थे।

(९) भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ विधर्मियों पर अत्याचार कभी नहीं हुआ और जहाँ किसी मनुष्य को उसके धार्मिक विश्वास के कारण उत्पीड़ित नहीं किया गया। आस्तिक, नास्तिक, अद्वैतवादी, द्वैतवादी, एकेश्वरवादी – सभी वहाँ वास करते हैं और एक साथ बिना द्वेषभाव के रहते हैं।

जड़वादी चार्वाकों ने ब्राह्मणों के मन्दिरों की सीढ़ियों पर से देवताओं के विरुद्ध प्रचार किया। बुद्धदेव जहाँ कहीं गए, उन्होंने हिन्दुओं द्वारा पवित्र मानी जानेवाली सभी पुरातन बातों को मिट्टी में मिला देने का प्रयत्न किया, पर उनके विरुद्ध एक आवाज तक न उठायी गयी और उन्होंने परिपक्व वृद्धावस्था में अपने शरीर का त्याग किया। ऐसा ही जैनियों के सम्बन्ध में हुआ, जो ईश्वर सम्बन्धी धारणा की हँसी उड़ाते थे।

(१०) हमारा विश्वास है कि समस्त धर्मों में सत्य का बीज है और इसीलिए हिन्दू सब का वन्दन करता है, क्यों कि इस संसार में सत्य अस्वीकार करने में नहीं, स्वीकार करने में हैं। हम परमात्मा को विभिन्न सम्प्रदायों के सर्वसुन्दर पुष्पों का स्तवक अर्पित करेंगे।

(११) क्या मैं यह चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिन्दू हो जाएँ ? कदापि नहीं, ईश्वर ऐसा न करें ! क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू या बौद्ध लोग ईसाई हो जाएँ ? ईश्वर इस इच्छा से बचाएँ !

प्रतिकूल परिस्थितियों को वीरतापूर्वक पराभूत करने में ही आत्मोन्नति की कुंजी है। आध्यात्मिक उन्नति के नियमों को आत्मसात करना ही जीवन का उद्देश्य है। हिन्दुओं से ईसाई लोग ज्ञान प्राप्त करें और ईसाइयों से हिन्दू। संसार के ज्ञान-भण्डार में प्रत्येक का बहुमूल्य योग है।

(१२) बीज भूमि में बो दिया गया और मिट्टी, वायु, तथा जल उसके चारों ओर रख दिये गएँ। तो क्या वह बीज मिट्टी हो जाता है, अथवा वायु या जल बन जाता है ? नहीं; वह तो वृक्ष ही होता है, वह अपनी वृद्धि के नियम से ही बढ़ता है – वायु, जल और मिट्टी को अपने में पचाकर, उनको उद्भिज पदार्थ में परिवर्तित करके एक वृक्ष हो जाता है।

ऐसा ही धर्म के संबंध में भी है। ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए, और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ, प्रत्येक को

चाहिए कि वह दूसरों के सार-भाग को आत्मसात करके पुष्टि-लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।

(१३) अपनी सन्तानों को यह शिक्षा दो कि सच्चा धर्म सकारात्मक होता है, नकारात्मक नहीं; अशुभ एवं असत् से केवल बचे रहना ही धर्म नहीं – पर वास्तव में शुभ एवं सत्कार्यों को निरन्तर करते रहना ही धर्म है।

लोगों को उपदेश देने अथवा ग्रन्थों का अध्ययन करने से सच्चे धर्म की प्राप्ति नहीं होती; सच्चे धर्म की कसौटी तो पवित्र पुरुषार्थ से आत्मा का उद्बुद्ध होना ही है।

(१४) धार्मिक मत-मतान्तरों को लेकर व्यर्थ में माथा-पच्ची मत करो। कायर लोग ही पापाचरण करते हैं, वीर पुरुष कभी भी पापानुष्ठान नहीं करते – यहाँ तक कि कभी वे मन में भी पाप का विचार नहीं लाते। प्राणिमात्र से प्रेम करने का प्रयास करो। साहसी, नीतिपरायण तथा दूसरों के प्रति सहानुभूतिशील बनने की चेष्टा करो।

(१५) आज भी हम बहुत से संप्रदाय और समाज पाते हैं, जो प्रायः समान आदर्श के अनुगामी होते हुए भी परस्पर लड़ रहे हैं। इसका कारण यह है कि एक सम्प्रदाय अपने आदर्शों को एक दूसरे के समान हूबहू प्रतिपादित नहीं करना चाहता।

मैं धर्म और संप्रदाय में अन्तर मानता हूँ। धर्म समस्त प्रचलित संप्रदायों को यह मानकर स्वीकार करता है कि वे एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त एक ही प्रकार के प्रयास हैं। संप्रदाय कुछ विरोधी और संघर्षात्मक होता है। भिन्न भिन्न संप्रदाय इसलिए हैं क्योंकि भिन्न भिन्न जातियाँ हैं और संप्रदाय अपने को समाज-विशेष के अनुकूल बनाकर, जनता जो चाहती है, उसे वह प्रदान करता है। चूँकि दुनिया बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं भौतिक दृष्टि से

अनंत प्रकार से भिन्न प्रकृतिवाले मनुष्यों से बनी हुई है, इसलिए ये लोग महान् और मंगलमय नैतिक विधान के अस्तित्व में उस प्रकार का विश्वास ग्रहण करते हैं, जो उनके लिए सब से अधिक उपयुक्त होता है। धर्म इन विश्वासों (संप्रदायों) को मान्यता प्रदान करता है और इनमें एक दिव्य तत्व निहित होने के कारण इनके विविध रूपों से उसे प्रसन्नता होती है। विभिन्न मार्गों द्वारा एक ही लक्ष्य पर पहुँचा जाता है।

(१६) सभी सम्प्रदायिक धर्म यह सत्य मानकर चलते हैं कि सभी मनुष्य समान हैं। किन्तु यह विज्ञान द्वारा सिद्ध नहीं होता। शरीरों में अन्तर की अपेक्षा मनों में अन्तर अधिक है। हिन्दू धर्म का एक मूलभूत सिद्धांत यह है कि सभी मनुष्य भिन्न हैं और अनेकता में ही एकता है।

अतः धर्म के उदार होने की नितान्त आवश्यकता है। धार्मिक विचारों को विस्तृत, विश्वव्यापक और असीम होना पड़ेगा, और तभी हम धर्म का पूर्ण रूप प्राप्त करेंगे, क्योंकि धर्म की शक्तियों की वास्तविक अभिव्यक्ति तो बस अब शुरू हुई है।

(१७) लोग कहते हैं – धर्म मर रहा है, आध्यात्मिकता का ह्रास हो रहा है; पर मुझे तो लगता है कि अभी ये पनपने लगे हैं। एक सुसंस्कृत एवं उदार धर्म की शक्तिं अभी ही तो सम्पूर्ण मानव जीवन में प्रवेश करने जा रहीं है।

जब तक धर्म कुछ इने-गिने पण्डे-पादरियों के हाथों में रहा, तब तक इसका दायरा मन्दिर, गिरजाघर, धर्मग्रन्थो, धार्मिक नियमों, अनुष्ठानों और बाह्याचारों तक सीमित रहा। पर जब हम यथार्थ आध्यात्मिक और विश्वव्यापक धारणा पर आ खड़े होंगे, तब और तभी धर्म यथार्थ हो उठेगा, सजीव हो उठेगा, हमारे जीवन का अंग बन जाएगा, हमारी हर गति में रहेगा, समाज के रोम रोम में समा जाएगा।

(१८) इस सामंजस्य को लाने के लिए दोनों को ही आदान-प्रदान करना होगा, त्याग करना पड़ेगा, यही नहीं, कुछ दुःखद बातों को भी सहन करना पड़ेगा।

मैं हिन्दू हूँ। मैं अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा यही समझता हूँ कि मेरा कुआँ ही सम्पूर्ण संसार है। ईसाई भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठे हुए यही समझता है कि सारा संसार उसी के कुएँ में है और मुसलमान भी अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा हुआ उसी को सारा ब्रह्माण्ड मानता है।

(१९) आज आवश्यकता इस बात की है कि सभी तरह के धर्म परस्पर बन्धुत्व का भाव रखें, क्योंकि अगर उन्हें जीना है, तो साथ साथ और मरना है, तो साथ साथ। बन्धुत्व की यह भावना पारस्परिक स्नेह और आदर पर आधारित होनी चाहिए। अन्त में देश-काल की सीमाओं में बद्ध ज्ञान का महामिलन उस ज्ञान से होगा, जो इन दोनों से परे है, जो मन तथा इन्द्रियों की पहुँच से परे है – जो निरपेक्ष है, असीम है, अद्वितीय है।

(२०) एकमात्र मनुष्य ही ज्ञान-लाभ का अधिकारी है, यहाँ तक कि देवता भी नहीं। यहूदी और मुसलमानों के मतानुसार ईश्वर ने देवदूत और अन्य समुदय सृष्टियों के बाद मनुष्य की सृष्टि की। और मनुष्य के सृजन के बाद ईश्वर ने देवदूतों से मनुष्य को प्रणाम और अभिनन्दन कर आने के लिए कहा। इबलीस को छोड़कर बाकी सब ने ऐसा किया। अतएव ईश्वर ने इबलीस को अभिशाप दे दिया। इससे वह शैतान बन गया। इस रूपक के पीछे यह महान सत्य निहित है कि संसार में मनुष्य-जन्म ही अन्य सब की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

(२१) संसार के सभी भागों में ऐसे बहुत से सम्प्रदाय हैं, जिनके धर्म के प्रधान अंग नाच-गान, उछल-कूद, चिल्लाना आदि है। वे जब संगीत, नृत्य और प्रचार करना आरम्भ करते हैं, तब उनके भाव मानो संक्रामक रोग की

तरह लोगों के अन्दर फैल जाते है ! पर हाय ! परिणाम यह होता है कि सारी जाति अधःपतित हो जाती है। इन धर्मोन्मत्त व्यक्तियों का उद्देश्य अच्छा भले ही हो, परन्तु इनको किसी उत्तरदायित्व का ज्ञान नहीं।

ईश्वर सम्बन्धी सभी सिद्धान्त – सगुण, निर्गुण, अनन्त, नैतिक नियम अथवा आदर्श मानव – धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत आने चाहिए। और जब धर्म इतने उदार बन जाएँगे, तब उनकी कल्याणकारिणी शक्ति सौ गुनी अधिक हो जाएगी। धर्मों में अद्भुत शक्ति है; पर केवल इनकी संकीर्णताओं के कारण अक्सर इनसे कल्याण की अपेक्षा अधिक हानि ही हुई है।

(२२) समस्त जगत् का एकत्व – यही श्रेष्ठ धर्ममत है। मैं अमुक हूँ – व्यक्तिविशेष – यह बहुत ही संकीर्ण भाव है। यथार्थ, 'अहम्' लिए यह सत्य नहीं है। मैं विश्वव्यापक हूँ – इस धारणा पर प्रतिष्ठित हो जाओं – और श्रेष्ठ की उपासना सदा श्रेष्ठ रूप में करो; कारण, ईश्वर चैतन्य-स्वरूप है, आत्मस्वरूप है, चैतन्य एवं सत्य में ही उसकी उपासना करनी होगी। मानव चैतन्यस्वरूप है और इसलिए मानव भी अनन्त है और केवल अनन्त ही अनन्त की उपासना में समर्थ है। हम अनन्त की उपासना करेंगे; वही सर्वोच्च आध्यात्मिक उपासना है।

(२३) संस्कृत शब्द 'ऋषि' की ठीक परिभाषा है – मंत्रों का द्रष्टा। ये मंत्र वेदों की ऋचाओं के भाव हैं। इन ऋषियों ने यह घोषित किया कि उन्होंने कुछ विशिष्ट तथ्यों का साक्षात्कार – अनुभव किया है – अगर 'अनुभव' शब्द को इन्द्रियातीत विषय में प्रयोग करना ठीक है तो – और तब उन्होंने अपने अनुभवों को लिपिबद्ध किया। हम देखते हैं कि यहूदियों और ईसाइयों में भी इसी सत्य का उद्घोष हुआ था।

बौद्ध लोग भी एक शाश्वत नैतिक नियम – धर्म – में विश्वास करते हैं और उस धर्म का ज्ञान सामान्य तर्कों के आधार पर नहीं हुआ था, वरन्

बुद्ध ने अतीन्द्रियावस्था में इसका आविष्कार किया था।

(२४) इस प्रकार सभी धर्मों ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि मनुष्य का मन कुछ खास क्षणों में इन्द्रियों की सीमाओं के ही नहीं, बुद्धि की शक्ति के भी परे पहुँच जाता है। उस अवस्था में वह उन तथ्यों का साक्षात्कार करता है, जिनका ज्ञान न कभी इन्द्रियों से हो सकता था और न चिंतन से ही। ये तथ्य ही संसार के सभी धर्मों के आधार हैं।

(२५) संसार के विभिन्न धर्म एक प्रकार के यात्रास्वरूप हैं, जहाँ तरह तरह के स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए हैं तथा जो भिन्न भिन्न दशाओं तथा परिस्थितियों में से होकर एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं।

(२६) हम को भारतीय धर्म के इस आदर्श को सर्वदा स्मरण रखना होगा और मेरी इच्छा है कि संसार की अन्य जातियाँ भी इस आदर्श को समझकर याद रखें, क्योंकि इससे धार्मिक लड़ाई-झगड़े कम हो जाएँगे।

शास्त्रग्रन्थों में धर्म नहीं होता, अथवा सिद्धान्तों, मतवादों, चर्चाओं तथा तार्किक उक्तियों में भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। धर्म तो स्वयं साक्षात्कार करने की वस्तु है। ऋषि होना होगा।

(२७) ऐ मेरे मित्रों, जब तक तुम ऋषि नहीं बनोगे, जब तक आध्यात्मिक सत्य के साथ साक्षात् नहीं होगा, निश्चय है कि तब तक तुम्हारा धार्मिक जीवन आरम्भ नहीं हुआ।

(२८) हम गीता में भी भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के विरोध के कोलाहल की दूर से आती हुई आवाज सुन पाते हैं, और देखते हैं कि समन्वय के वे अद्भुत प्रचारक भगवान् श्रीकृष्ण बीच में पड़कर विरोध को हटा रहे हैं। वे कहते हैं, सारा जगत् मुझमें उसी तरह गुँथा हुआ है, जिस तरह तागे में मणि गुँथी रहती हैं।

(२९) अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जो शंकर के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एवं चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय का एक ही साथ अधिकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर विद्यमान है, जिसका हृदय भारत में अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सब के लिए द्रवित हो, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वों की परिकल्पना करे, जिनसे भारत में अंथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायों में समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे।

(३०) वे अद्भुत महापुरुष थे – श्री रामकृष्ण परमहंस। . . . .

संसार में जितने धर्म हैं उनकी उपासना प्रणाली में विभिन्नता होते हुए भी वे वस्तुतः एक ही हैं। किसी किसी स्थान पर लोग मंदिरों का निर्माण कर उन्हीं में उपासना करते हैं, कुछ लोग अग्नि की उपासना करते हैं; किसी किसी स्थान में लोग मूर्ति-पूजा करते हैं था कितने ही आदमी ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करते।

ये सब ठीक हैं, इन सब में प्रबल विभिन्नता विद्यमान है, किन्तु यदि प्रत्येक धर्म के सार, उनके मूल तथ्य, उनके वास्तविक सत्य के ऊपर विचार कर देखें तो वे सर्वथा अभिन्न हैं।

(३१) इस प्रकार के भी धर्म हैं जो ईश्वरोपासना की आवश्यकता ही नहीं स्वीकार करते। यही क्या, वे ईश्वर का अस्तित्व भी नहीं मानते। किन्तु तुम देखोगे, ये सभी धर्मावलम्बी साधु-महात्माओं की ईश्वर की भाँति उपासना करते हैं। बौद्ध धर्म इस बात का उल्लेखनीय उदाहरण है। भक्ति सभी धर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का आदेश है।

(३२) व्यक्ति तो केवल एक है और हम में से प्रत्येक वही है। केवल

एकत्व ही प्रेम है और निर्भयता है, पार्थक्य हमें घृणा और भय की ओर ले जाता है। एकत्व ही नियम का प्रतिपालन करता है। यहाँ पृथ्वी पर हम छोटे-छोटे स्थानों को घेर लेने तथा अन्य लोगों को अपवर्जित करने की चेष्टा करते हैं,पर हम आकाश में ऐसा नहीं कर सकते।

किन्तु संप्रदायवादी धर्म, जब वह यह कहता है कि 'केवल यही मुक्ति का मार्ग है अन्य सब मिथ्या है' तो ऐसा ही करने की चेष्टा करता है। हमारा लक्ष्य इन छोटे घरौंदों को हटाने का, सीमा को इतना विस्तृत करने का है कि वह दिखाई ही न दे, और यह समझने का होना चाहिए कि सभी धर्म ईश्वर की ओर ले जाते हैं।

(३३) 'हमसे यह पृथक है', ऐसा भाव मन में उत्पन्न होने से ही अन्य द्वन्द्व भावों का विकास होता है, किन्तु सम्पूर्ण एकत्व अनुभव होने पर मनुष्य का शोक या मोह नहीं रह जाता – 'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।'

सब प्रकार की दुर्बलता को ही पाप कहते हैं। इससे हिंसा तथा द्वेष आदि का जन्म होता है। इसलिए दुर्बलता का दूसरा नाम पाप है। हृदय में आत्मा सर्वदा प्रकाशमान है, परन्तु उधर कोई ध्यान नहीं देता। केवल इस जड़ शरीर, हड्डी तथा मांस के एक अद्भुत पिंजरे पर ही ध्यान रखकर लोग 'मैं', 'मैं' करते हैं। यही सब प्रकार की दुर्बलता का मूल है।

(३४) धर्म की यह सब ग्लानि दूर करने के लिए भगवान् शरीर धारण कर श्रीरामकृष्ण रूप में वर्तमान युग में इस संसार में अवतीर्ण हुए थे। उनके प्रदर्शित सार्वभौम मत के प्रचार से ही जीव और जगत् का मंगल होगा। ऐसे सभी धर्मों में समन्वय करनेवाले अद्भुत आचार्य ने कई शताब्दियों से भारत में जन्म नहीं लिया था।

मैं उस जगत्गुरु महासमन्वयाचार्य श्री १०८ रामकृष्णदेव से प्रार्थना

करता हूँ कि तुम्हारे हृदय में वे आविर्भूत हों, जिससे तुम कृतकृत्य तथा दृढ़चित्त होकर महामोहसागर से लोगों के उद्धार के लिए प्रयत्न कर सको। वीरों के लिए मुक्ति करतलगत है, कापुरुषों के लिए नहीं।

(३५) हम प्रभु को खोजें और उसे पाकर हम सब पा जाएँगे। गिरजे, सिद्धान्त, रूप ये सब तो धर्म के सुकुमार पौधे की रक्षार्थ झाड़ियों के घेरे के सदृश्य हैं, किन्तु आगे चलकर उनको तोड़ना पड़ेगा, जिससे वह छोटा पौधा पेड़ बन सके। इस प्रकार विभिन्न धार्मिक संप्रदाय, धर्म-ग्रन्थ, वेद और धर्म-शास्त्र इस छोटे पौधे के केवल 'गमले' मात्र हैं; किन्तु उसे गमलों से निकलना और संसार को भरना ही होगा।

उपनिषद् और गीता सच्चे शास्त्र हैं, और राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर आदि सच्चे अवतार हैं; क्योंकि उनके हृदय आकाश के समान विशाल थे – और इन सब में श्रेष्ठ हैं रामकृष्ण।

(३६) ज्ञानी को सभी रूपों से मुक्त होना पड़ता है; न तो वह हिन्दू है, न बौद्ध, न ईसाई, आपितु वह तीनों ही है। जब सभी कर्मफलों का त्याग किया जाता है, प्रभु को अर्पित किया जाता है, तब किसी कर्म में बन्धन की शक्ति नहीं रह जाती। ज्ञानी अत्यन्त बुद्धिवादी होता है वह हर वस्तु अस्वीकार कर देता है। वह दिन-रात अपने से कहता है, "कोई आस्था नहीं है, कोई पवित्र शब्द नहीं है, स्वर्ग नहीं, धर्म नहीं, नरक नहीं, सम्प्रदाय नहीं, केवल आत्मा है।

(३७) दार्शनिक दृष्टि से बुद्ध या ईसा जैसा कोई मनुष्य नहीं था; हमने उनके रूप में ईश्वर को देखा। कुराण में, मुहम्मद बार बार कहते हैं कि ईसा को सूली पर नहीं चढ़ाया गया, वह केवल उसका रूपक है, ईसा को कोई भी क्रूसित नहीं कर सकता।

(३८) यदि किसी पानी के गिलास की तली में हवा का एक साधारण

कण भी रख दो, तो वह ऊपर के अनन्त वातावरण से मिलने के लिए कितना संघर्ष करता है। आत्मा की भी वही दशा है। वह भी छटपटा रही है अपना शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए और अपने भौतिक शरीर से मुक्त होने के लिए। वह अपना अनन्त विस्तार पुनः प्राप्त करना चाहती है। सब जगह यही होता है। ईसाइयों, बौद्धों, मुसलमानों, अज्ञेयवादियों या पुरोहितों में आत्मा निरंतर छटपटाती रहती है।

(३९) बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, जैन सभी का यह एक भ्रम है कि सभी के लिए एक कानून और एक नियम है। यह बिल्कुल गलत है; जाति और व्यक्ति के प्रकृति-भेद से शिक्षा-व्यवहार के नियम सभी अलग अलग हैं; बलपूर्वक उन्हें एक करने से क्या होगा ?

(४०) हिन्दू कहते हैं कि राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता बहुत अच्छी चीज है, किन्तु वास्तविक चीज आध्यात्मिक स्वाधीनता अर्थात मुक्ति है। यही जातीय जीवन का उद्देश्य है। वैदिक, जैन, बौद्ध, द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत सभी इस सम्बन्ध में एकमत हैं। इसमें हाथ न लगाना – नहीं तो सर्वनाश हो जाएगा।

(४१) मेरा विचार है कि चाहे हम ईश्वर के सार्वभौम पिता-भाव में विश्वास करें या न करें, हमें अपने बन्धुओं से प्रेम करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक धर्म और मत मानव को दिव्य मानता है और तुम्हें इसलिए उसे न सताना चाहिए कि तुम कहीं उसके भीतर के दिव्यत्व को चोट न पहुँचाओ।

(४२) अद्वैत और द्वैत मूलतः एक ही हैं। अन्तर केवल अभिव्यंजना का है। जैसे द्वैतवादी परम पिता और परम पुत्र को दो मानते हैं; अद्वैतवादी दोनों को एक ही समझते हैं। द्वैत प्रकृति में, रूप में है और अद्वैत शुद्ध अध्यात्म उसके साररूप में है। त्याग और वैराग्य का भाव सभी धर्मों में है और वह परमेश्वर तक पहुँचने का एक साधन माना गया है।

(४३) हमें दिखलाना है हिन्दुओं की आध्यात्मिकता, बौद्धों की जीव-दया, ईसाइयों की क्रियाशीलता, एवं मुस्लिमों का बन्धुत्व, – और ये सब अपने व्यावहारिक जीवन के माध्यम द्वारा। हमने निश्चय किया, "हम एक सार्वभौम धर्म का निर्माण करेंगे।"

(४४) किसी राष्ट्र के अभ्युदय के लिए उसके पास एक आदर्श होना आवश्यक है। श्रीरामकृष्ण के व्यक्तित्व के रूप में वह तुम्हें मिला है। अन्य व्यक्ति अब हमारे आदर्श क्यों नहीं बन सकते, इसका कारण यह है कि उनके दिन लद चुके हैं; और इसके लिए कि वेदान्त सब को उपलब्ध हो सके, निश्चय ही ऐसा व्यक्ति चाहिए, जिसकी सहानुभूति वर्तमान पीढ़ी से हो। श्रीरामकृष्ण से इसकी संपूर्ति होती है। अतः अब तुम्हें चाहिए कि उनको सब के समक्ष रखो। चाहे उन्हें कोई साधु माने या अवतार माने, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

(४५) हमें उसी मूल सत्य की फिर से शिक्षा ग्रहण करनी होगी, जो केवल यहीं से, हमारी इसी मातृभूमि से प्रचारित हुआ था। फिर एक बार भारत को संसार में इसी मूल तत्त्व का – इसी सत्य का प्रचार करना होगा। ऐसा क्यों है ? इसलिए नहीं कि यह सत्य हमारे शास्त्रों में लिखा है, वरन् हमारे राष्ट्रीय साहित्य का प्रत्येक विभाग और हमारा राष्ट्रीय जीवन उससे पूर्णतः ओतप्रोत है।

इस धार्मिक सहिष्णुता की तथा इस सहानुभूति की और भ्रातृभाव की महान् शिक्षा प्रत्येक बालक, स्त्री, पुरुष, शिक्षित, अशिक्षित सब जाति और वर्ण वाले सीख सकते हैं। 'तुमको अनेक नामों से पुकारा जाता है, पर तुम एक हो।'

(४६) प्रत्येक राष्ट्र और जाति का एक न एक विशिष्ट आदर्श अवश्य होता है – राष्ट्र के समस्त जीवन में संचार करने वाला एक महत्त्वपूर्ण आदर्श; कह सकते हैं कि वह आदर्श राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ होती है। परन्तु भारत

का मेरुदण्ड राजनीति नहीं है, सैन्य-शक्ति भी नहीं है, व्यावसायिक आधिपत्य भी नहीं है और न यांत्रिक शक्ति ही है वरन् है धर्म – केवल धर्म ही हमारा सर्वस्व है और उसी को हमें रखना भी है। आध्यात्मिकता ही सदैव से भारत की निधि रही है।

(४७) इतने मत-मतान्तरों, विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों तथा शास्त्रों के होते हुए भी यदि कोई सिद्धान्त हमारे सब सम्प्रदायों का साधारण आधार है, तो वह है आत्मा की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास, और यह समस्त संसार का भाव-स्रोत परिवर्तित कर सकता है।

हिन्दू, जैन तथा बौद्धों में, वस्तुतः भारत में सर्वत्र यह अटल विश्वास परिव्याप्त है कि आत्मा ही समस्त शक्तियों का आधार है।

(४८) जान पड़ता है कि इस राष्ट्रीय एकता में आध्यात्मिक स्वर अलापने के लिए हम लोग विधाता द्वारा ही नियुक्त किए गए हैं।

भौतिकवाद,इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म या संसार का कोई 'वाद' कदापि सफल नहीं हो सकता था, यदि तुम स्वयं उसका प्रवेश द्वार न खोल देते।

(४९) समस्त देशों में भारत को ही सहिष्णुता और आध्यात्मिकता का देश होना था और इसीलिए यहाँ की विभिन्न उपजातियों या सम्प्रदायों में अपने देवता की प्रधानता का झगड़ा दीर्घकाल तक नहीं चल सका। हमारा देश धर्मसहिष्णुता का एक उज्ज्वल दृष्टान्त बन गया हैं ! यहाँ और केवल यहीं, लोग अपने धर्म के विद्वेषियों के लिए, परधर्मावलम्बी लोगों के लिए उपासना-गृह और गिरजे आदि बनवा देते हैं। समग्र संसार हमसे इस धर्मसहिष्णुता की शिक्षा ग्रहण करने के इन्तजार में बैठा हुआ है।

(५०) भारत का कोई भी धर्मसम्प्रदाय ऐसा नहीं है, जो यह सिद्धान्त न मानता हो कि भगवान् हमारे अन्दर हैं और देवत्व सबके भीतर विद्यमान है। इस मूल तत्त्व के प्रचार का हमारी इस मातृभूमि में, इस भारतवर्ष में

जितना अभाव है, उतना और कहीं नहीं।

सुधार करने में हमे चीज के भीतर,उसकी जड़ तक पहुँचना होता है। इसी को मैं आमूल सुधार कहता हूँ। आग जड़ में लगाओ और उसे क्रमशः उपर उठने दो एवं एक अखंड भारतीय राष्ट्र संगठित करो।

(५१) यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही धर्म का अवलम्बन करें तो इतने विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति क्यों होती ? सब लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने के लिए अनेक प्रकार के उद्योग और चेष्टाएँ हुईं, किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। तलवार के जोर से जिस स्थान पर लोगों को एक धर्मावलम्बी बनाने की चेष्टा की गयी, वहाँ भी एक की जगह दस धर्मों की उत्पत्ति हो गयी – इतिहास इस बात का प्रमाण है। समस्त संसार में सबके अनुकूल एक धर्म नहीं हो सकता।

(५२) भारत में विभिन्न धर्मों में कभी विरोध नहीं था, वरन् प्रत्येक धर्म स्वाधीन भाव से अपना कार्य करता रहा, इसीलिए यहाँ अभी तक प्रकृत धर्मभाव बना है। इस स्थान पर यह बात ध्यान में रखनी होगी कि विभिन्न धर्मों में तब विरोध उत्पन्न होता है, जब मनुष्य यह विश्वास कर लेता है कि सत्य का मूल मंत्र मेरे ही पास है और जो मनुष्य मुझ जैसा विश्वास नहीं करता वह मूर्ख है; और दूसरा व्यक्ति सोचता है कि अमुक व्यक्ति ढोंगी है, क्योंकि अगर वह ऐसा न होता, तो मेरा अनुगमन करता।

(५३) यथार्थ धर्म वह है, जो इन सभी पौराणिक वर्णनों के परे है, ऐसा धर्म कभी केवल इन्हीं सब पर निर्भर नहीं हो सकता। पाश्चात्य देशों में धर्म की धारणा यह है कि बाइबिल के नए व्यवस्थान और ईसा के बिना धर्म हो ही नही सकता।

आधुनिक विज्ञान वास्तव में धर्म की भित्ति को और भी दृढ़ बनाता है। समुदय ब्रह्माण्ड एक अखण्ड वस्तु है, यह विज्ञान के द्वारा प्रमाणित

किया जा सकता है।

(५४) यथार्थ धर्म कभी परिवर्तित नहीं होता। धर्म अनुभूति की वस्तु है – वह मुख की बात, मतवाद अथवा युक्तिमूलक कल्पना मात्र नहीं है – चाहे वह जितना ही सुन्दर हो। आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना, तद्रूप हो जाना – उसका साक्षात्कार करना, यही धर्म है।

(५५) बहुतों को भारतीय विचार, भारतीय प्रथा, भारतीय आचार-व्यवहार, भारतीय दर्शन और भारतीय साहित्य पहले पहल कुछ प्रतिषेधक से मालूम होते हैं; परन्तु यदि वे धैर्यपूर्वक उक्त विषयों का विवेचन करें, मन लगाकर अध्ययन करें और इन तत्त्वों में निहित महान् सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करें तो फलस्वरूप निन्यानबे प्रतिशत लोग आकर्षित होकर उनसे विमुग्ध हो जाएँगे।

(५६) यह तत्त्व कि ईश्वर कल्याणकारी और परम दयालु है, हमारा पिता, माता, मित्र, प्राणों के प्राण और आत्मा की अन्तरात्मा हैं, केवल भारत ही जानता रहा है।

अन्त में जो शैवों के लिए शिव, वैष्णवों के लिए विष्णु, कर्मियों के लिए कर्म, बौद्धों के लिए बुद्ध, जैनों के लिए जिन, ईसाइयों और यहूदियों के लिए जिहोवा, मुसलमानों के लिए अल्ला और वेदान्तियों के लिए ब्रह्म है – जो सब धर्मों, सब सम्प्रदायों के प्रभु हैं – जिनकी सम्पूर्ण महिमा केवल भारत ही जानता था, वे ही सर्वत्यागी, दयामय प्रभु हमलोगों को आशीर्वाद दें, हमारी सहायता करें, हमें शक्ति दें, जिससे हम अपने उद्देश्य को कार्यरूप में परिणत कर सकें।

(५७) किसी भी दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल और गुरुतर हैं। जाति, धर्म, भाषा, शासन-प्रणाली – ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र की सृष्टि करते हैं। यदि एक एक जाति को लेकर हमारे

राष्ट्र से तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से संसार के दूसरे राष्ट्र संगठित हुए हैं, वे संख्या में यहाँ के उपादानों से कम हैं।

(५८) हमारे पास एकमात्र सम्मिलन भूमि है, हमारी पवित्र परम्परा, हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आधार वही है, और उसी पर हमें संगठन करना होगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में राष्ट्रीय ऐक्य का आधार धर्म ही है, अतः भारत के भविष्य संघटन की पहली शर्त के तौर पर उसी धार्मिक एकता की आवश्यकता है।

(५९) हम जानते हैं हमारे विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हों, हमारे धर्म में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायों द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायों के ऐसे कुछ सामान्य आधार अवश्य हैं, उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में अद्भुत विविधता के लिए गुंजाइश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रुचि के अनुसार जीवन निर्वाह के लिए हमें सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है।

(६०) ऐ वीर ! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं।

गर्व से पुकार कर कहो कि भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरी शिशु सज्जा, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वाद्र्धक्य की वाराणसी है।

भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है; और रात-दिन कहते रहो कि – 'हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो; माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बनाओ।'

(६१) पूर्व का प्रधान अभाव धर्म नहीं है; उनके पास धर्म पर्याप्त है

– जलते हुए हिन्दुस्तान के लाखों दुःखार्त भूखे लोग सूखे गले से रोटी के लिए चिल्ला रहे है। वे हमसे रोटी माँगते हैं और हम उन्हें देते हैं पत्थर ! क्षुधातुरों को धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है, भूखों को दर्शन सिखाना उनका अपमान करना है।

मैं यहाँ पर अपने दरिद्र भाइयों के निमित्त सहायता माँगने आया था, पर मैं यह पूरी तरह समझ गया हूँ कि मूर्तिपूजकों के लिए ईसाई-धर्मावलम्बियों से, और विशेषकर उन्हीं के देश में, सहायता प्राप्त करना कितना कठिन है।

(६२) यह बात सच नहीं है कि मैं किसी धर्म का विरोधी हूँ। और मैं भारत के ईसाई पादरियों से शत्रुता रखता हूँ, यह उतना ही असत्य है। यद्यपि एक भारतीय ईसाई पादरी ने यह कहा था कि हिन्दू लोग अपने धर्म ग्रन्थों का अर्थ भूल गए हैं और पादरी लोगों ने ही उसका अर्थ खोज निकाला, पादरियों के उस बृहत् समुदाय में मुझे एक भी ऐसा नहीं मिला, जो संस्कृत का एक वाक्य भी समझ सकता – पर फिर भी उनमें से कई ऐसे थे, जिन्होंने वेदों तथा हिन्दू धर्म के अन्य पवित्र ग्रन्थों की निन्दात्मक समालोचना के विद्वतापूर्ण लेख पढ़कर सुनाए !

(६३) मित्रों ! यदि तुम सच्ची सहानुभूति के साथ सहायता देने के लिए – न कि विनाश करने के लिए – आते हो, तो ईश्वर तुमको सफल बनाए। परन्तु यदि इस दलित और पतित राष्ट्र के मस्तक पर समय कुसमय सतत गालियों की बौछार करके अपने निजी राष्ट्र की नैतिक श्रेष्ठता की विजयपूर्ण घोषणा करना ही तुम्हारा उद्देश्य है, तो मैं तुमको साफ साफ बतला देना चाहता हूँ कि यदि कुछ भी न्याय के साथ तुलना की जाएगी, तो नैतिक आचार में हिन्दू लोग संसार की अन्य जातियों की अपेक्षा अत्यधिक उन्नत पाए जाएँगे।

भारत में धर्म पर प्रतिबन्ध नहीं रखा गया। किसी भी मनुष्य को

अपने इष्टदेव या सम्प्रदाय या अपने गुरु चुनने में कोई रोक-टोक नहीं की जाती।

(६४) **स्वामी योगानन्द :-** (मठ स्थापना के समय) – तुम्हारा यह सब कार्य विदेशी ढंग पर हो रहा है। श्रीरामकृष्ण का उपदेश क्या ऐसा ही था ?

**स्वामी विवेकानन्द :-** तुमने कैसे यह जाना कि यह सब श्रीरामकृष्ण के भावानुसार नहीं है ? तुम क्या अनन्त भवमय गुरुदेव को अपनी संकीर्ण परिधि में आबद्ध करना चाहते हो ? मैं इस सीमा को तोड़कर उनके भाव जगत् भर में फैलाऊँगा। श्रीरामकृष्ण ने उनके पूजा-पाठ का प्रचार करने का उपदेश मुझे कभी नहीं दिया। वे साधन-भजन, ध्यान-धारणा तथा अन्य ऊँचे धर्मभावों के सम्बन्ध में जो सब उपदेश दे गए हैं, उन्हें पहले अपने में अनुभव कर फिर सर्वसाधारण को उन्हें सिखलाना होगा।

मत अनन्त हैं; पथ भी अनन्त हैं। सम्प्रदायों से भरे हुए जगत में और एक नवीन सम्प्रदाय पैदा कर देने के लिए मेरा जन्म नहीं हुआ। प्रभु के चरणों में आश्रय पाकर हम कृतार्थ हुए हैं। त्रिजगत् के लोगों को उनकी भाव-राशि देने के निमित्त ही हमारा जन्म हुआ है।

जगत् के सब धर्ममतों को एक अक्षय सनातन धर्म का रूपान्तर मात्र जानकर समस्त धर्मावलम्बियों में मैत्री स्थापित करने के लिए श्रीरामकृष्ण ने जिस कार्य की उद्भावना की थी, उसीका परिचालन इस संघ का व्रत है।

(६५) इस प्रश्न का तो हल करने के लिए अभी शेष ही है कि शान्ति की जय होगी या युद्ध की, सहिष्णुता की विजय होगी या असहिष्णुता की, शुभ की विजय होगी या अशुभ की, शरीर की विजय होगी या बुद्धि की, संसारिकता की विजय होगी या आध्यात्मिकता की। हमने तो युगों पहले इस प्रश्न का अपना हल ढूँढ़ लिया था और सौभाग्य या दुर्भाग्य के मध्य

हम अपने इस समाधान पर दृढ़ारूढ़ हैं और कालान्त तक उस पर दृढ़ रहने का संकल्प किये हुए हैं। हमारा समाधान है; असांसरिकता – त्याग।

(६६) भारतीय जीवन-रचना का यही प्रतिपाद्य विषय है, उसके अनन्त संगीत का यही दायित्व है, उसके अस्तित्व का यही मेरुदण्ड है, उसके जीवन की यही आधारशीला है, उसके अस्तित्व का एकमात्र हेतु – मानवजाति का आध्यात्मीकरण। अपने इस लम्बे जीवन-प्रवाह में भारत अपने इस मार्ग से कभी भी विचलित नहीं हुआ, चाहे तातारों का शासन रहा हो और चाहे तुर्कों का, चाहे मुगलों ने राज्य किया हो और चाहे अंग्रजों ने।

और मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रीय जीवन का कोई भी ऐसा काल मुझे दिखा दे, जिसमें यहाँ समस्त संसार को हिला देने की क्षमता रखनेवाले आध्यात्मिक महापुरुषों का अभाव रहा हो। भारत का कार्य आध्यात्मिक है।

(६७) विरले ही तत्त्वज्ञ ! करेंगे शेष अखिल उपहास,
निन्द भी नरश्रेष्ठ, ध्यान मत दो, निर्बन्ध, अयास
यत्र-तत्र निर्भय विचरो तुम, खोलो माया पाश
अंधकारपीड़ित जीवों के ! दुःख से बनो न भीत,
सुख की भी मत चाह करो, जाओ हे, रहो अतीत
द्वन्द्वों से सब, रटो वीर सन्यासी, मंत्र पुनीत, ओम् तत्सत् ओम् !

(६८) भारत के शिक्षित समाज से मैं इस बात पर सहमत हूँ कि समाज का आमूल परिवर्तन करना आवश्यक है। पर यह किया किस तरह जाए ? सुधारकों की सब कुछ नष्ट कर डालने की रीति व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है।

मेरी योजना यह है ! हमने अतीत काल में कुछ बुरा नहीं किया – निश्चय ही नहीं किया। हमारा समाज खराब नहीं, बल्कि अच्छा है। मैं केवल चाहता हूँ कि वह और भी अच्छा हो। हमें असत्य से सत्य तक अथवा बुरे

से अच्छे तक पहुँचना नहीं है। वरन् सत्य से उच्चतर सत्य तक, श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम तक पहुँचना है। मैं अपने देशवासियों से कहता हूँ कि अब तक जो तुमने किया, सो अच्छा ही किया है, अब इस समय और भी अच्छा करने का मौका आ गया।

(६९) अतः हमें आगे बढ़ना ही चाहिए – सर्वधर्मत्यागियों और मिशनरियों द्वारा बताए गए तोड़-फोड़ के रास्ते से नहीं, वरन् स्वयं के अपने भाव के अनुसार स्वयं अपने पथ से। यही मेरी कार्य-प्रणाली हैं – हिन्दुओं को यह दिखा देना कि उन्हें कुछ भी त्यागना नहीं पड़ेगा, केवल उन्हें ऋषियों द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना होगा और सदियों की दासता के फलस्वरूप प्राप्त अपनी जड़ता को उखाड़ फेंकना होगा।

यही मेरी समस्त कार्य-योजना है। मैं इसका पूरा कायल हूँ। प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है : भारत में वह 'धर्म' है। उसे प्रबल बनाइए, बस, दोनों ओर के अनन्य स्रोत उसी के साथ साथ चलेंगे।

मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' 'जागो, उठो और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नहीं।' यही एकमात्र 'कर्म' है। त्याग ही 'धर्म' का सार है और कुछ नहीं।

(७०) रॉबर्ट इंगारसोल :– (अमेरिकन अज्ञेयवादी) – मैं इस संसार को जितना हो सके भोग लेने में विश्वास करता हूँ। मैं चाहता हूँ नारंगी को निचोड़ कर उसका छिलका फेंके; क्योंकि इस संसार को छोड़कर और किसी भी वस्तु की सत्यता के संबंध में मैं आश्वस्त नहीं हूँ।

स्वामी विवेकानन्द:– इस संसार रूपी नारंगी को जिस तरह निचोड़ना चाहते हैं, मुझे उससे अधिक बेहतर उपाय मालूम है, और मुझे उससे अधिक रस भी मिलता है; मुझे मालूम है कि मेरा नाश नहीं होनेवाला है, अतः मुझ में व्यस्तता भी नहीं है। मुझे मालूम हैं कि मुझमें डर नाम की चीज नहीं

है। अतः मुझे निचोड़ने में सुख मिलता है। . . . अतः मैं सभी नर-नारी को प्यार करने में सक्षम हूँ। मेरे लिए सभी ईश्वर हैं। एकबार सोचकर देखिए जरा, मनुष्य को ईश्वर मानकर उसे प्यार करने में कितना आनंद आता है। अपनी नारंगी को इस तरह आप क्यों नहीं निचोड़ते ? उससे हजार गुना अधिक रस निकालिए, अन्तिम बिन्दु तक रस निकाल लिजिए।

(७१) तुम्हारी अपनी इच्छा-शक्ति ही तुम्हारी प्रार्थना का उत्तर देती है – किन्तु विभिन्न व्यक्तियों के मन की धर्म सम्बन्धी विभिन्न धारणाओं के अनुसार वह विभिन्न आकार में अभिव्यक्त होती है। हम उसे बुद्ध, ईसा, कृष्ण, जिहोवा, अल्ला अथवा अग्नि चाहे किसी नाम से पुकार सकते हैं, किन्तु वास्तव में वह है हमारी ही आत्मा।

एक हिन्दू रानी थी – उसकी बड़ी तीव्र इच्छा थी कि उसके पुत्र इसी जन्म में मुक्ति-लाभ कर लें। इसी उद्देश्य से उसने उन पुत्रों के लालन-पालन क सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया। वह अति शैशवावस्था से उनको झुलाते झुलाते सुलाने के समय उनके समीप यह गाना गाती थी – 'तत्त्वमसि, तत्त्वमसि'।

उनके तीन पुत्र संन्यासी हो गए, किन्तु चतुर्थ पुत्र का, उसे राजा बनाने के उद्देश्य से, अन्यत्र पालन-पोषण हुआ। विदा देते समय माँ ने उसे कागज का एक टुकड़ा देकर कहा, "बड़े होने पर इसमें क्या लिखा है, पढ़ना।" उस कागज के टुकड़े में लिखा था . . . 'ब्रह्म सत्य और सब मिथ्या।' आत्मा न कभी मरती है, न मारती है। निःसंग बनो, अथवा सत्संग करो।' बड़े होने पर जब राजपुत्र ने इसे पढ़ा, तो वह भी उसी समय संसार त्यागकर संन्यासी हो गया।

(७२) श्रीरामकृष्ण ने कभी किसी के विरुद्ध कोई कड़ी बात नहीं कही। उनका हृदय इतना उदार था कि उनके बारे में सभी सम्प्रदाय सोचते

थे कि वे उन्हीं के हैं।वे सभी से प्रेम करते थे। उनकी दृष्टि में सभी धर्म सत्य थे – वे कहते थे, धर्मजगत् में सभी धर्मों का स्थान है। वे मुक्त थे, किन्तु सर्वसाधारण के प्रति समान प्रेम में ही उनके मुक्त स्वभाव का परिचय पाया जाता था; वज्रवत् कठोरता में नहीं।

इस प्रकार के कोमलहृदय व्यक्ति ही नूतन भाव की सृष्टि करते हैं। और कर्मप्रवण लोग इस भाव को चारों ओर फैला देते हैं। सन्त पॉल इस दूसरी कोटि के थे। इसीलिए उन्होंने सत्य का आलोक चारों ओर फैलाया था।

(७३) धार्मिक विचार-धाराओं की तरंग उठती है, गिरती है और उन सभी तरंगों के शीर्ष-प्रदेश में उस युग के पैगम्बर विराजते हैं। श्रीरामकृष्ण वर्तमान युग के उपयुक्त धर्म की शिक्षा देने आए थे, जो विधायक है, न कि विध्वंसक। उन्हें अभिनव ढंग से प्रकृति के समीप जाकर सत्य जानने की चेष्टा करनी पड़ी थी, फलस्वरूप उन्होंने वैज्ञानिक धर्म को प्राप्त कर लिया था। वह धर्म किसी को कुछ मान लेने को नहीं कहता है, स्वयं परख लेने को कहता है। 'मैं सत्य का दर्शन करता हूँ, तुम भी इच्छा करने पर उसका दर्शन कर सकते हो।'

(७४) यदि सभी रंगों को एक रंग में परिणत करना सम्भव होता, तो चित्रविद्या ही लुप्त हो जाती। सम्पूर्ण एकत्व है 'विश्राम' या 'लय'; सभी अभिव्यक्तियों को हम एक ईश्वर से ही निकली हुई कहते हैं।

'ताओ'वादी, कन्फ्यूशस मतवादी, बौद्ध, हिन्दू, यहूदी, मुसलमान, ईसाई, और जरथुष्ट्र के शिष्य, इन सब ने प्रायः समान रूप से, 'तुम दूसरों से जिस प्रकार का व्यवहार चाहते हो, ठीक उसी तरह का व्यवहार दूसरों के प्रति भी करों,' इस अपूर्व नीति का प्रचार किया है। किन्तु केवल हिन्दुओं ने इस नीति की व्याख्या दी है, क्योंकि वे ही इसका कारण समझ पाए थे।

मनुष्य को अन्य सबके प्रति इसलिए प्रेम करना होगा कि अन्य सब स्वयं उसी के रूप हैं। केवल 'एक' की ही सत्ता है।

(७५) **एक आलोचक**:– स्वामीजी, संन्यासी को अपने देश की माया त्याग कर सब देशों के प्रति समदृष्टि अपनानी चाहिए, क्यों ?

**स्वामी विवेकानन्द**:– जो अपनी माता को प्यार नहीं देता वह दूसरों को भोजन, दूसरों की माँ का पालन कैसे करेगा ? अर्थात् संन्यासी के लिए भी यही उचित है वे अपनी मातृभूमि के प्रति अटूट प्रेम का सृजन करें। जो अपने देश से प्यार नहीं करता वह पूरी वसुधा को कैसे अपनाएगा ? पहले स्वदेश-प्रेम, फिर उस स्वदेश-प्रेम का सहारा लेकर विश्व-प्रेम।

(७६) युवकों ! उठो, जागो, शुभ मुहूर्त आ गया है। सब चीजें अपने आप तुम्हारे सामने खुलती जा रही हैं। हिम्मत करो और डरो मत। केवल हमारे ही शास्त्रों में ईश्वर के लिए 'अभीः' विशेषण का प्रयोग किया गया है। हमें 'अभीः' – निर्भय होना होगा, तभी हम अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे।

उठो, जागो, तुम्हारी मातृभूमि को इस महाबलि की आवश्यकता है। इस कार्य की सिद्धि युवकों से ही हो सकेगी।

(७७) हमारे राष्ट्रीय खून में एक प्रकार के भयानक रोग का बीज समा रहा है, वह है प्रत्येक विषय को हँसकर उड़ा देना, गाम्भीर्य का अभाव, इस दोष का सम्पूर्ण रूप से त्याग करो। वीर बनो, श्रद्धासम्पन्न होओ, और सब कुछ तो इसके बाद आ ही जाएगा।

मुझे दृढ़ विश्वास है, सर्वसाधारण जनता के भीतर से हजारों मनुष्य आकर इस व्रत को ग्रहण करेंगे और इस कार्य की इतनी उन्नति तथा विस्तार करेंगे, जिसकी आशा मैंने कभी कल्पना में भी न की होगी। मुझे अपने देश पर विश्वास है – विशेषतः अपने देश के युवकों पर।

(७८) जगत् में जितने बड़े बड़े धर्माचार्य हुए हैं, उनमें केवल लाओत्से;

बुद्ध और ईसा ने ही उपर्युक्त स्वर्णिम नियम के भी परे जाकर शिक्षा दी है, 'तुम लोग अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो', 'जो तुमसे घृणा करते हैं, उनसे भी प्रेम करो।'

(७९) तत्त्वसमूह पहले से ही विद्यमान है; हम उसकी सृष्टि नहीं करते, केवल उसका आविष्कार करते हैं।... धर्म केवल सत्य का साक्षात्कार मात्र है। विभिन्न मतवाद, विभिन्न पथ-प्रणाली मात्र हैं, वे धर्म नहीं हैं। जगत् के विविध धर्म विभिन्न जातियों की आवश्यकतानुसार समयोचित एक ही धर्म के प्रयोग हैं।

(८०) मतवाद केवल विरोध का निर्माण करता है। देखो न, वास्तव में ईश्वर के नाम से लोगों को शान्ति मिलनी चाहिए, परन्तु ऐसा न होकर जगत् में जितना रक्तपात हुआ है, उसमें से आधे से अधिक ईश्वर के नाम पर ही हुआ है।

बिलकुल मूल तक पहुँचो; स्वयं ईश्वर से ही पूछो कि उसका स्वरूप कैसा है ? यदि वह उत्तर नहीं देता है, तो समझना होगा कि वह नहीं है। किन्तु जगत् के सभी धर्म कहते हैं कि उसने उत्तर दिया है।

(८१) **श्रीजगमोहन लाल :-** (खेतरी महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी) – स्वामीजी, आप तो हिंदू साधू हैं, आप मुसलमान के घर कैसे रह रहे हैं ?

**स्वामी विवेकानन्द :-** "यह आपने क्या कहा ? मैं तो संन्यासी हूँ। मैं आपके समस्त विधि निषेध से परे हूँ। मैं मेहतर के साथ भी भोजन कर सकता हूँ। भगवान मुझे अपराधी मानेंगे, इसका भय मुझे नहीं है, क्योंकि यह भगवान द्वारा अनुमोदित है। शास्त्र की ओर से भी मुझे भय नहीं है, क्यों कि यह शास्त्र द्वारा भी अनुमोदित है। परन्तु मुझे आपका और समाज का भय है, क्योंकि आप लोग तो भगवान या शास्त्र की परवाह नहीं करते। मैं देखता हूँ कि विश्व प्रपंच में सर्वत्र ब्रह्म स्थापित है। मेरी दृष्टि में ऊँचा-नीचा

कोई नहीं है। 'शिव शिव'।

(८२) साधारणतः लोग अपने इर्द-गिर्द के वातावरण में रमे रहते है। इससे उपर उठने के लिए उन्हें प्राचीन अंधविश्वासों, वंशानुगत अंधविश्वासों, वर्ग, नगर, देश के अन्धविश्वासों तथा इन सब की पृष्ठभूमि में स्थित मानव-प्रकृति में सन्निहित अन्धविश्वासों की विशाल राशि पर विजय प्राप्त करनी होती है।

कुछ तो ऐसे वीर लोग संसार में हैं ही, जो सत्य को जानने का साहस करते हैं, जो उसे धारण करने तथा अन्त तक उसका पालन करने का साहस करते हैं।

(८३) तुम लोग त्याग करो, महान् बनो। अपने आरामों का, अपने सुखों का, अपने नाम यश, और पदों का – इतना ही नहीं, अपने जीवन तक का – त्याग करो और मनुष्यरूपी श्रृंखला से ऐसा पुल बनाओ, जिस पुल पर से करोड़ो लोग इस संसार-सागर को पार कर जाएँ।

समस्त मंगलकारी शक्तियों को एकत्र करो। किस ध्वजा के नीचे तुम अग्रसर हो रहे हो, इसकी परवाह मत करो। तुम्हारी ध्वजा का रंग हरा, नीला या लाल कुछ भी हो, उसकी चिंता मत करो, बल्कि सभी रंगों को एक में मिला दो और उससे उस अत्युज्ज्वल श्वेत रंग का निर्माण करो, जो कि प्रेम का रंग है। हमें तो कर्म ही करना है, फल अपने आप होता रहेगा।

(८४) चाहे हम उसे वेदान्त कहें या और किसी नाम से पुकारें, परन्तु सत्य तो यह है कि धर्म और विचार में अद्वैत ही अन्तिम शब्द है और केवल उसी के दृष्टिकोण से सब धर्मों और सम्प्रदायों को प्रेम से देखा जा सकता है। हमें विश्वास है कि भविष्य के प्रबुंद्ध मानवी समाज का यही धर्म है।

अन्य जातियों के अपेक्षा हिन्दुओं को यह श्रेय प्राप्त होगा कि उन्होंने इसकी सर्वप्रथम खोज की। इसका कारण यह है कि वे अरबी और हिब्रू

दोनों जातियों से अधिक प्राचीन हैं।

(८५) व्यावहारिक अद्वैतवाद का – जो समस्त मनुष्य-जाति को अपनी ही आत्मा का स्वरूप समझता है, तथा उसी के अनुकूल आचरण करता है – विकास हिन्दुओं में सार्वभौमिक भाव से होना अभी भी शेष है। किसी धर्म अनुयायी व्यावहारिक जगत् के दैनिक कार्यों के क्षेत्र में, इस समानता को योग्य अंश में ला सके हैं तो वे इस्लाम और केवल इस्लाम के अनुयायी हैं – यद्यपि सामान्यतः जिस सिद्धान्त के अनुसार ऐसे आचरण का अवलम्बन है, उसके गम्भीर अर्थ से वे अनभिज्ञ हैं, जिसे कि हिन्दू साधारणतः स्पष्ट रूप से समझते हैं।

(८६) हमें दृढ़ विश्वास है कि वेदान्त के सिद्धान्त कितने ही उदार और विलक्षण क्यों न हों परन्तु इस्लाम की सहायता के बिना, मनुष्य जाति के महान् जनसमूह के लिए वे मूल्यहीन हैं।

हमारी मातृभूमि के लिए इन दोनों विशाल मतों का सामंजस्य – हिन्दुत्व और इस्लाम – वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर – यही एक आशा है।

(८७) हम मनुष्य जाति को उस स्थान पर पहुँचाना चाहते हैं, जहाँ न वेद है, न बाइबिल है, न कुरान; परन्तु वेद, बाइबिल और कुरान के समन्वय से ही ऐसा हो सकता है। मनुष्य जाति को यह शिक्षा देनी चाहिए कि सब धर्म उस धर्म के, उस एकमेवाद्वितीय के भिन्न-भिन्न रूप हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति इन धर्मों में से अपना मनोनुकूल मार्ग चुन सकता है।

मैं अपने मानस-चक्षु से भावी भारत की उस पूर्णावस्था को देखता हूँ, जिसका इस विप्लव और संघर्ष से तेजस्वी और अजेय रूप में वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर के साथ उत्थान होगा।

(८८) जैसा कि बुद्धदेव ने कहा है, 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' यदि आवश्यक हो तो अपने हृदय को अपने हाथ से निकालकर फेंक देने की मुझ में शक्ति है। प्रेम में मतवालापन और फिर भी बन्धन का अभाव; प्रेम-शक्ति से जड़ का भी चैतन्य में रूपान्तर – यही तो हमारे वेदान्त का सार है। वह एक ही है जिसे अज्ञानी जड़ के रूप में देखते हैं और ज्ञानी ईश्वर के रूप में। और जड़ में अधिकाधिक चैतन्य-दर्शन – यही है सभ्यता का इतिहास। . . . सुख और दुःख में, सन्तोष और सन्ताप में हम यही एक सबक सीख़ रहे हैं। कर्म के लिए अधिक भावप्रवणता अनिष्टकर है। 'वज्र के समान दृढ़ तथा कुसुम के समान कोमल' . . . यही है सार नीति। . . . दूसरों के प्रति अपना प्रेम, गुण-ग्राहकता और सहानुभूति प्रकट करने की शक्ति जिसमें होती है, उसे विचारों के प्रचार करने में औरों से अधिक सफलता प्राप्त होती है।

(८९) सुनो, सत्य जो जीवन में मैंने समझा है यह संसार
घोर तरंगाघात-क्षुब्ध, बस एक नाव जो करती पार –
तन्त्र, मन्त्र, नियमन प्राणों का मत अनेक, दर्शन, विज्ञान,
त्याग, भोग, भ्रम-घोर बुद्धि का, "प्रेम-प्रेम" धन लो पहचान।
(सखा के प्रति)

(९०) नीचे सिन्धु गाता बहु तान,
महीमान किन्तु नहीं वह
भारत, तुम्हारी अम्बुराशि विख्यात हैं,
रूप-राग जलमय हो जाते हैं,
गाते हैं यहाँ, किन्तु करते नहीं गर्जन।
(सागर के वक्ष पर)

## भाग - ४

# कुछ महत्वपूर्ण उक्तियाँ

(१) श्रीरामकृष्ण के उपदेश हमारे सम्मुख न केवल स्वयं उन्हीं के विचारों को प्रगट करते हैं, वरन् वे करोड़ों मानवों की आशा और विश्वास के भी प्रतीक हैं, जिस पर अनतिदूर भविष्य में हम उस एक विराट मन्दिर के निर्माण की आशा कर सकते हैं जहाँ हिन्दू और इतरेतर धर्मावलम्बी गण उसी एक परमात्मा की उपासना के लिए एक हृदय हो सम्मिलित हो सकेंगे – जो हम से दूर नहीं है।

*– प्रो. मैक्स मूलर*

(२) श्रीरामकृष्ण तीस कोटि भारतीयों के उस अखण्ड आध्यात्मिक जीवन के पूर्णप्रकाश-स्वरूप थे, जिसकी पावनधारा विगत दो सहस्र वर्षों से सतत प्रवाहित होती आ रही है। इतना ही नहीं उनके जीवन संगीत से संसार के सहस्रों धर्मपन्थों एवं उपपन्थों के विभिन्न, परस्पर विरोधी दिखनेवाले स्वरों में समरसता लानेवाली मंजुल ध्वनि निकली है।

*– रोमाँ रोलाँ*

(३) भक्ति के सूत्र में साकारवादी और निराकारवादी एक हो जाते हैं;

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई एक हो जाते हैं; चारो वर्ण एक हो जाते हैं। सब धर्मावलम्बियों को तुम परम आत्मीय समझकर आलिंगन करते हो ! तुम्हारी भक्ती है। तुम सिर्फ देखते हो – अन्दर ईश्वर की भक्ति और प्रेम है या नहीं ?

मुसलमान को भी यदि अल्लाह के ऊपर प्रेम हो तो वह भी तुम्हारा अपना आदमी होगा; ईसाई को यदि ईसा के ऊपर भक्ति हो, तो वह तुम्हारा परम आत्मीय होगा।

*– श्री महेन्द्रनाथ गुप्त "श्री मं"*

(४) श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव ने सभी पथों को स्वीकारा, सभी विश्वासों एवम् धारणाओं तथा प्रत्येक धर्म के भक्ति साधनों का अभ्यास किया। अन्ततः सभी उनके लिए सत्य हैं। वे एक मूर्तिपूजक हैं साथ ही निर्गुण, अनन्त सत्ता में समर्पित ध्यानकर्ता भी हैं, जिन्हें उन्होंने 'अखण्ड सच्चिदानन्द' कहकर पुकारा।

*– प्रतापचन्द्र मजुमदार*

(५) अपने आध्यात्मिक यात्रा के आरम्भ से ही श्रीरामकृष्णदेव सर्वधर्म-समन्वय-स्वरूप थे। . . . यदि उनका दृष्टिकोण व्यापक नहीं होता तो उन्होंने अल्लाह का नाम नहीं जपा होता तथा मुस्लिम भोजन नहीं किया होता। ईशु का चित्र उनके कमरे के दीवार पर चैतन्यदेव एवं नित्यानन्द के चित्रों के साथ टंगा रहता था।

*– गिरीशचन्द्र सेन*

(६) हम कहते हैं – देखो ! मातृभूमि की जाग्रत आत्मा में विवेकानन्द आज भी जीवित हैं। भारतमाता की सन्तानों के हृदय में विवेकानन्द आज भी अधिष्ठित हैं।

*– श्री अरविन्द*

(७) यदि आप भारत को समझना चाहते हैं तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सब कुछ सकारात्मक या भावात्मक है, नकारात्मक या अभावात्मक कुछ भी नहीं।

*– रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

(८) मैंने स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों को बहुत अच्छी तरह पढ़ा है। फलस्वरूप अपने देश के प्रति मेरा जो प्रेम था, वह हजारगुना बढ़ गया है।

*– महात्मा गांधी*

(९) १९ वीं शताब्दी को आधिभौतिक शास्त्रों के उत्कर्ष का उच्च स्थान माना गया है। इस प्रकार की शताब्दी के उत्तरार्ध में, हजारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष में प्रचलित आध्यात्मिक शास्त्रों को पश्चिमी राष्ट्रों के विद्वानों को समझाकर उनसे इन शास्त्रों की अपूर्वता के सम्बन्ध में मान्यता प्राप्त कराना और जिस राष्ट्र में इस प्रकार के शास्त्र ग्रथित हुए हैं वहाँ के निवासियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना यह कोई छोटा-मोटा काम नहीं है।

*– लोकमान्य तिलक*

(१०) पता नहीं कि आज की पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों को पढ़ते हैं। पर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों पर उनका बहुत सशक्त प्रभाव पड़ा था। . . . स्वामीजी ने जो कुछ लिखा या कहा, वह हमारे हित में हैं और वह आनेवाले लम्बे समय तक हमे प्रभावित करता रहेगा। वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी, मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे। . . .

*– पण्डित जवाहरलाल नेहरू*

(११) स्वामी विवेकानन्द ने अपने समूचे जीवन को समग्र राष्ट्र एवं मानवता के नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए समर्पित कर दिया था। . . . आधुनिक भारत उन्हीं की सृष्टि है।

*– नेताजी सुभाष्चन्द्र बोस*

(१२) स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दुधर्म को बचाया और इस प्रकार भारत की रक्षा की। वे न होते, तो हम अपना धर्म गँवा बैठ्ते और आजादी नहीं पा सकते थे। अतएव हम सभी बातों के लिए विवेकानन्द के ऋणी हैं।

*– चक्रवर्ती राजगोपालाचारी*

(१३) स्वामी विवेकानन्द ने पहली बार भारत को विश्व के नक्शे में रखा . . .।

*– मोरारजी आर. देसाई*

(१४) यदि आप सचमुच मनुष्य की दिव्यता में विश्वास करते हैं, तो एक क्षण के लिए भी हमारे पास आयी उस महान् परम्परा को स्वीकार करने में आप न हिचकें, जिसके स्वामी विवेकानन्द महानतम व्याखाता थे।

*– डॉ. एस. राधाकृष्णन्*

(१५) स्वामी विवेकानन्द ! क्या ही नाम ! वे उनमें से थे, जिन्होंने मुझे बहुत ही प्रेरणा दी, शक्तिशाली बनने के लिए प्रेरणा दी, ईश्वर का सेवक होने की प्रेरणा दी, अपने देश का सेवक होने की प्रेरणा दी, दरिद्र का सेवक होने की प्रेरणा दी, मानवजाति का सेवक होने की प्रेरणा दी।

*– डॉ. अहमद सुकार्णो*

(१६) भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन बहुत समय तक धूमायित होता रहा, जब तक कि विवेकानन्द के निःश्वास ने राख को उड़ाकर अग्नि को धधका न दियां।

*– रोमाँ रोलाँ*

(१७) एक नाजुक परिस्थिती में जातीय चेतना को संग्रहीत और वाणी प्रदान करने वाले इस व्यक्ति (स्वामी विवेकानन्द) के आविर्भाव से बढ़कर कोई दूसरा महत्तर प्रमाण इस बात की पुष्टि के लिएं नहीं दिया जा सकता था कि सनातन धर्म नित्य सजीव है, सप्राण है और भारत आज भी उतना ही महान् है जितना वह अतीत में था।

– *भगिनी निवेदिता*

(१८) सचमुच में यह दावा किया जा सकता है कि विवेकानन्द से पूर्व किसी भी भारतीय ने अमरीकनों और अँगरेजों को इसके लिए बाध्य नहीं किया था कि उसके साथ व्यवहार समानता के स्तर पर हो – एक गुलाम मित्र के रूप में नहीं, एक कट्टर प्रतिपक्ष के रूप में नहीं, पर सच्चे शुभचिन्तक और मित्र के रूप में, जो सिखाने और सीखने, सहायता देने और माँगने के लिए समान रूप से तैयार हैं।

– *ईशरवुड*

(१९) आज सौ वर्ष बाद भी, विश्व-इतिहास के मानदण्ड पर स्वामी विवेकानन्द के महत्त्व को आँकना बड़ा ही कठिन है।

– *डॉ. ए. एल. बाशम*

(२०) जिसने भी उनका (स्वामी विवेकानन्द) व्याख्यान सुना – चाहे वह अँगरेज हो, ईसाई हो या मुस्लिम, आर्यसमाजी हो या ब्रह्मसमाजी – सबके लिए वह आँख खोलनेवाला साबित हुआ।

– *स्वामी रामतीर्थ*

(२१) जब मैं अपने छात्र-जीवन की ओर पीछे लौटकर देखता हूँ, तो मुझे स्पष्ट स्मरण आता कि इस महान् संन्यासी की कुछ रचनाओं का पठन मुझमें कैसे बिजली तड़का देता था। . . . क्यों कि मैंने उनमें एक ऐसे सन्त का दर्शन किया, जिसने धर्म का अपना कोई संकीर्ण खेमा नहीं बनाया।

– *डॉ. जाकिर हुसैन*

(२२) दिग्गज आत्मा थे स्वामी विवेकानन्द ! सर्वोपरि, वे चरित्र के गठनकर्ता थे, निःस्वार्थ और दृढ़ इच्छा-शक्ति सम्पन्न स्त्री-पुरुषों के गठनकर्ता थे।

– *प्रो. डॉ. जे.एम.जी. बेल*

(२३) स्वामीजी एक संग्रामी आचार्य थे। . . . वस्तुतः विवेकानन्द की रचनाएँ समग्र राष्ट्रीय चेतना एवं बंगाल के विपल्वी आन्दोलन के लिए प्रेरणा-स्रोत थी। महाभारत युग के बाद हिन्दुधर्म को प्रचण्ड गतिशील धारणाओं को विवेकानन्द के समान और किसी ने नहीं उपस्थित किया।

– *राष्ट्रकवि रामधारीसिंह दिनकर*

(२४) . . . स्वामीजी आज हमलोगों के बीच नहीं हैं किन्तु उन्होंने जिस आध्यात्मिक आलोक को हमलोगों के लिए प्रज्ज्वलित किया है वह चिरकाल तक जगत् को ज्योति प्रदान करता रहेगा।

– प्रेमचन्द

# संदर्भ
## (प्रयुक्त संक्षिप्त रूप)

व.१, २, ३ = श्रीरामकृष्ण वचनामृत भाग-१, २, ३
अ.वा. = अमृतवाणी
अ. = अपूर्वानन्दकृत माँ सारदा
ग. = गम्भीरानन्दकृत माँ श्रीसारदादेवी
सं.जी = अपूर्वानन्दकृत श्रीसारदादेवी – संक्षिप्त जीवनी
स्ने.छा = माँ की स्नेहछाया में
त. = तपस्यानन्दकृत श्रीसारदादेवी का अंग्रेजी चरित्र
१ से १० = विवेकानन्द साहित्य खण्ड १ से १०
सं. = स्वामी विवेकानन्द ग्रंथावली संचयन
क. = कवितावली
स.स्वा = सबके स्वामीजी

### इनके आगे दिया हुआ क्रमांक पृष्ठ संख्या दर्शाता है।

### भाग – १

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. व.१-२४५ | १३. व.१-१२९-१३१ | २५. व.१-३९७-४८४ | ३६. व.२-१०० | ४८. व.२-५०९ |
| २. व.१-८२ | १४. व.१-१३९ | २६. व.१-३९८ | ३७. व.२-१००-१०१ | ४९. व.२-५९६ |
| ३. व.१-२४५ | १५. व.१-१४१ | २७. | ३८. व.२-६ | ५०. व.२-५९६-५९७ |
| ४. व.१-८३ | १६. व.१-१५७-४८४ | व.१-३९९-४००-४०३ | ३९. व.२-३१८ | अ.वा.१२३, ३०३ |
| ५. व.१-८२ | १७. व.१-१५६ | २८. व.१-४८७ | ४०. व.२-३१८-३२१ | ५१. अ.वा.-१२३ |
| ६. व.१-८३ | १८. व.१-१५७ | २९. व.१-४८४ | ४१. व.२-३२३ | ५२. व.२-५८२ |
| ७. व.१-४६ | १९. व.१-१५७-१५८ | ३०. व.१-४८५-४०७ | ४२. व.२-२७२-२७३ | ५३. R.K. as we saw Him -३७२ |
| ८. व.१-४६ | २०. व.१-२२९-१६८ | ३१. व.१-४९५ | ४३. व.२-३५७ | |
| ९. व.१-४५ | २१. व.१-२१२ | ३२. व.१-५५० | ४४. व.२-३५८ | ५४. R.K. as we saw Him-३८२ |
| १०. व.१-१२६ | २२. व.१-३४८ | ३३. व.१-५८७ | ४५. व.२-३५८ | |
| ११. व.१-१२६ | २३. व.१-३४९ | ३४. व.२-२-३ | ४६. व.२-३८४-४०८ | |
| १२. व.१-१२७ | २४. व.१-३९७-३९८ | ३५. व.२-१००-१०१ | ४७. व.२-४३२ | |

### भाग – २

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. अं.-३८२ | ८. अ.-३३८ | १५. स्ने.छा.-९३ | २२. सं.जी.-८६ | २८. ग.- |
| २. त.-२३६ | ९. अ.-३३८ | १६. ग.-३२३ | २३. सं.जी.-८६ | २९. ग.-३४१ |
| ३. ग.-३२१ | १०. अ.-३३८ | १७. ग.-३२३ | २३. सं.जी.-८६ | ३०. सं.जी.- |
| ४. ग. ३२२ | ११. अ.-४८० | १८. ग.-३२४ | २४. सं.जी.-८६ | |
| ५. ग. ३२१ | १२. स्ने.छा.-१५३ | १९. ग.-५७८ | २५. सं.जी.-८६ | |
| ६. ग.-४४० | १३. ग.-४७८ | २०. ग.-५६६ | २६. ग.- | |
| ७. अ.-१९४ | १४. ग.-४७८ | २१. ग.-५४४ | २७. ग.- | |

## भाग - ३

१. १-२५६
२. ४-९८३
३. १-४
४. १-२७
५. १-२६१
६. १-२६४
७. १-२-२०६
८. १-३
९. १-२४५
१०. १-२५६
११. १-२६-२५५
१२. ११-२६
१३. १-२५६
१४. १-३५१
१५. २-२००
१६. १-२१२
१७. २-२००
१८. २-२०१
१९. २-२०१
२०. १-५३
२१. १-८५
२२. २-३००
२३. २-११४
२४. २-११४
२५. ५-१६
२६. ५-१४८
२७. ५-१४८
२८. ५-१५६
२९. ५-१६१
३०. ५-२४८
३१. ५-२४८
३२. ६-२७२
३३. ६-३४
३४. ६-२३
३५. ६-२७५
३६. ६-२६०
३७. १०-२१
३८. १०-२७
३९. १०-५१
४०. १०-५९
४१. १०-३६
४२. १०-३४
४३. १०-९
४४. ७-२७१
४५. ५-१५
४६. ५-३५
४७. ५-५६
४८. ५-६२
४९. ५-८२
५०. ५-६०
५१. ५-२५०
५२. ५-२५०
५३. ७-६१
५४. २-१५८
५५. ५-१०
५६. ५-५०
५७. ५-१६०
५८. ५-१६०
५९. ५-१८०
६०. ९-२२७
६१. १-२२
६२. सं.-२१०
६३. सं.-२११
६४. सं.-२१८
६५. सं.-३४१
६६. सं.-३४१
६७. सं.-३४५
६८. सं.-३७१
६९. सं.-३७२
७०. स.स्वा.-२२
७१. सं.-२६०
७२. सं.-२४८
७३. सं.-२४९
७४. सं.-२६४
७५. स.स्वा.-११
७६. सं.-१४२
७७. सं.-१४३
७८. सं.-२६५
७९. सं.-२६५
८०. सं.-२६५
८१. स.स्वा.-१५
८२. २-२१०
८३. सं.-२१५
८४. ६-४०५
८५. ६-४०५
८६. ६-४०५
८७. ६-४०५
८८. ६-३७७
८९. क.-५९
९०. क-७८

यह पुस्तक सचिव, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम लक्सा, वाराणसी, इनकी सूचना के अनुसार मुद्रित तथा प्रकाशित हुई है। वाराणसी के लोगों में मुफ्त वितरित करने के लिए इसका सम्पूर्ण खर्च प्रा. श्री श्रीधर, व्याख्याता, आइ.आर.टी.टी. एरोडे, तामिलनाडु इन्होंने वहन किया है।

मुखपृष्ठ पर छपे रामकृष्ण मठ तथा मिशन के मुहर में,
– जो स्वामी विवेकानन्दजीने स्वयं बनायी थी, –
तरंगायित जलराशी कर्म का प्रतीक है,
कमल भक्ति का तथा उगता हुआ सूर्य ज्ञान का।
चित्र में दर्शायी हुई सर्प की आकृति योग एवं
जागृत कुण्डलिनी शक्ति की परिचायक है;
और चित्र के बीच में जो हंस की छबि है,
उसका अर्थ है परमात्मा।
अतएव कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों का योग के साथ
सम्मिलन होने पर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है –
यही इस चित्र का अर्थ है।

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ, (प्रकाशन विभाग)

धन्तोली, नागपुर-४४० ०१२.